असफल आराधना।

(लेखक-श्री रजेश')

प्रतिमा तुम, प्रेम-पुजारी हूं मैं तुम सागर, एक हिलोर हूं मैं।
तुम हो रवि, मैं प्रिय, पंकज हूं, तुम हो शशि चन्द्र, चकोर हूं मैं ॥
तुम दीपक, मैं परवाना बना, तुम हो घन-श्याम तो मोर हूं मैं।
नयनों में तुम्हारी ही मूर्ति रही, रही देख तुम्हारी ही ओर हूं मैं ॥

जग में, मग में बिखराया हुआ, पग में चुभता हुआ शूल हूं मैं।
बढ़ती ही गई न भुलाई गई, वह भूली हुई लघु भूल हूं मैं ॥
दुनियां की विनोद क्रिया के लिये बरबाद किया हुआ फूल हूं मैं।
सबने मुझको ठुकराया सदा, अब आपके पैर की धूल हूं मैं ॥

कर चाहता था पर तूलिका ले कभी चित्र तुम्हारा बना न सका।
स्वर चाहता किन्तु तुम्हारे लिये कभी गीत मनोहर गा न सका ॥
नयनों में बसा न सका तुमको, तुम में अपने को मिला न सका।
बस शोक यही है मुझे कि कभी किसी भांति तुम्हें अपना न सका ॥

सब भांति निराश था जीवन से, दुखके झटके सहते, सहते।
निरुपाय तुम्हारा सहारा लिया, भव-सागर में बहते, बहते ॥
तुम सीख गये नभ में उड़ना, धरती पर ही रहते, रहते।
"मुझको भी बुलाओ या आओ यहां" मुंह सूख गया कहते, कहते ॥

मिलती रही किन्तु तुम्हारे लिये, वसुधा की सुधा ठुकराता रहा।
सुख की, दुख की परवाह न की, कभी आह न की, मुसकाता रहा ॥
स्वजनों ने, समाज ने त्याग दिया पर गीत तुम्हारे ही गाता रहा।
तुम क्यों ठुकराते हो, जीवन में सब ठौर तो ठोकरें खाता रहा ॥

दुनियां कुछ भी समझे पर मैं सकता निज राह न त्याग कभी।
यह जान के जीवित हूं जग में, फिर आयेगा स्वर्ण-विहाग कभी ॥
घटता न वियोग-व्यथा-भय से कवि के उर का अनुराग कभी।
यदि स्नेह न दो तो दुखी रहेगी, बुझती नहीं प्रेम की आग कभी ॥
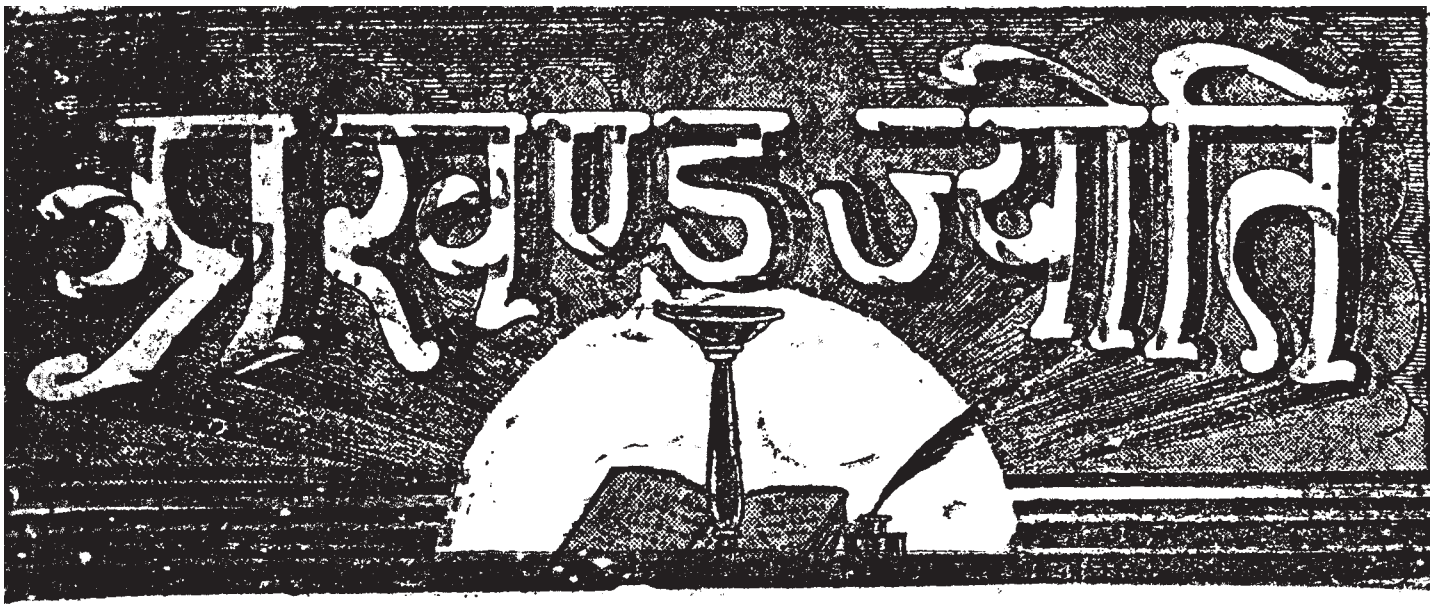
(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २॥)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

एक अंक का ।)

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ८] मथुरा, १ अगस्त सन् १९४७ ई० [अंक ८

अपने दोष और दुर्गुणों को निकाल डालिये।

जीवन में जितनी सांसारिक कठिनाइयां हम देखते हैं उनका बीज कारण हमारे अन्दर रहता है। हमारे गुण, कर्म और स्वभाव जिस योग्य होते हैं, उसीके अनुकूल परिस्थितियां मिल कर रहती हैं। किसी विशेष कारण से कुछ समयके लिए खास स्थिति प्राप्त होजाय तो वह अधिक समय ठहरती नहीं, स्थायी रूप से मनुष्य को वही मिलता है जिसके वह योग्य है, जिसका वह अधिकारी है।

यदि आप आज किन्हीं कठिनाइयों में हैं तो इसका कारण ईश्वर नहीं है, वरन् आपके ही कुछ दोष हैं जिन्हें आप भले ही जानते हों या न जानते हों। पाप, एवं दुष्कर्म ही एक मात्र दुख का कारण नहीं होते। अयोग्यता, मूर्खता, निर्बलता, निराशा, फूट, एवं आलस्य भी ऐसे दोष हैं जिनका परिणाम पाप के ही समान और कई बार उससे भी अधिक दुखदायी होता है। व्यक्तिगत दुर्गुणों से व्यक्ति दुख पाते हैं और जातीय दुर्गुणों से जातियाँ विपत्ति के दलदल में फंस जाती हैं।

आप कठिनाइयों से बचना या छुटकारा प्राप्त करना चाहते हैं तो अपने भीतरी दोषों को ढूंढ डालिए और उन्हें निकाल बाहर करने में जुट जाइए। दुर्गुणों को हटाकर उनके स्थान पर आप सद्गुणों को अपने अन्दर जितना स्थान देते जायंगे उसी अनुपात के अनुसार आपका जीवन विपत्ति से छूटकर सम्पत्ति की ओर अग्रसर होता जायगा।

सुप्त मानसिक शक्तिएं।

(प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

महात्मा ईसा ने एक बार कहा—'जिसके पास है, उसे और दिया जायगा, किन्तु जिसके पास कम है, उससे जो कुछ है वह भी ले लिया जायगा'। शायद ही कोई ऐसी उक्ति हो जिसमें इतना गूढ़ अर्थ भरा हो। बाइबिल की कहानी में आता है कि परमेश्वरने एक नौकर को दो दैवी सम्पदाएं दीं किन्तु एक वर्ष पश्चात् उसने उन दो के साथ एक और उत्पन्न करके परमेश्वर को अर्पित कीं। परमेश्वर ने दैवी सम्पदाओं की इस अभिवृद्धि पर उसे स्वर्ग का सुखप्रदान किया। दूसरे नौकर ने दो सम्पदाओं में से एक नष्ट कर दी और केवल एक ही जगन्नियन्ता को अर्पण की। परमेश्वर बड़े क्रुद्ध हुए और बोले—'अभागे मनुष्य, तू व्यर्थ आलस्य में समय बरबाद करता रहा, तूने वृद्धि करने के स्थान पर एक और दैवीसम्पदा खो दी। मैं तुझसे यह भी सम्पदा छीन लेता हूं और इसे उस व्यक्ति को दे देता हूं जिसने अपने दैवी गुणों की लगन, तपस्या, एवं दीर्घकालीन अभ्यास से वृद्धि की है।' ऐसा कह कर आदिकर्त्ता ने वह सम्पदा भी लेकर साधु पुरुष को दे डाली।

हममें से प्रायः सभी उस नौकर के लिए दुःखी होंगे जिसने अपनी रही सही सम्पदा भी खो डाली। वास्तव में अपने नित्य प्रति के दैनिक जीवन में हम ऐसा ही कर रहे हैं। दैवी जीवन में निरन्तर वृद्धि होती रहनी चाहिए, एक दैवी सम्पदा के पश्चात् दूसरी दैवी सम्पदा बढ़ती रहे. तभी प्रगति स्थिर रह सकती है। एक दैवी सम्पदा दूसरी दिव्य मानसिक मंजूषा को खोलने की कुंजी है। एक के पश्चात् दूसरी आध्यात्मिक शक्ति हमें मिलती जावेगी। दैवी जीवन में भी क्रम है, नियत व्यवस्था एवं समस्वरता है। जब मनुष्य एक द्वार खोलकर आगे बढ़ता है, तो दूसरा मार्ग दिखाई देता है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर मानसिक एवं दिव्य शक्तियां बढ़ती रहती हैं।

प्रायः सभी उच्च मानसिक शक्तियों के बीज हमारे मस्तिष्क में इस लिए पड़े हुए हैं कि हम उनका विकास करें अपने संकल्प तथा कार्यों के द्वारा उन्हें बढ़ायें और अपने आपको पूर्ण करें। यदि हम परमेश्वर को अपने दिव्य गुणों को बढ़ा कर दिखाएंगे, तो वे प्रसन्न होकर हमें और अधिक प्रतिभाएं प्रदान करेंगे। हमें अपने गुणों की उचित देख रेख करनी चाहिए और उन्हें सूखने न देना चाहिए।

'जो शक्तियां मेरे उच्च **विकसित** मस्तिष्क वाले मित्र में हैं, वे मुझमें भी मौजूद हैं। केवल दृढ़ इच्छा शक्ति एवं विश्वास के द्वारा मैं उन्हें बढ़ा सकता हूं'—ऐसा स्मरण रखना चाहिए।

तुम्हारे गुण कौन २ हैं? तुम कौन कौन कार्य उत्तम रीति से कर सकते हो? दिलचस्पी किस २ में है? सर्वोत्कृष्ट चीज़ तुम कौन२ बना सकते हो? इन प्रश्नों का उत्तर लिखो। अपने दिव्य गुण, प्रतिभा मालूम करो। तुम शायद कहो, 'हममें कुछ विशेषता नहीं है।' ऐसा सोचना मूर्खता है। ऐसा सम्भव नहीं कि बिना विशेषता के कोई मनुष्य हो सके। परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य, पशु पक्षी, कीट, पतंग को कुछ विशेषता देकर भेजा है। यह गुण शारीरिक सांसारिक, साहित्यक, आध्यात्मिक, किसी न किसी प्रकार का अवश्य होना चाहिये। आप इसे ढूंढ़िये और सतत उद्योग द्वारा बढ़ाइये। आप अवश्य यह कार्य कर सकते हैं। आप और केवल आप ही इस शुभ कार्य में सफल हो सकते हैं।

विशेषतः ईश्वर दो प्रकारों से मनुष्यों के धर्म अधर्म और न्यायी अन्यायी होने की परीक्षा करता है। पहला सांसारिक विशेषाधिकार और विशेष सुखों की सामग्री देकर दूसरा अधिक से अधिक कष्टों को देकर।

❀ ❀ ❀

मथुरा १ अगस्त सन् १९४७ ई०

आत्मिक संतुलन कायम रखो

संसार में पापों की अनेक किस्में हैं। चोरी, ठगी, लूट, ढोंग, हिन्सा, हत्या, शोषण, व्यभिचार, असत्य, मद्यपान, छल, विश्वास घात, कृतघ्नता आदि अनेकों पातक गिनाये जासकते हैं। इन सब प्रकार के पापों के हेतु शास्त्र कारों ने से दो बताये हैं (१) अभिमान (२) अवमान। अभिमान—का फलितार्थ क्रोध और अवमान का फलितार्थ लोभ विशेष रूप से प्रकट होते हैं, लोभ और क्रोध में अधिक पाप बनते हैं तो भी अभिमान और अवमान की सीमा अधिक विस्तृत है।

यह दोनों अध्यात्मिक पाप हैं, जिनके कारण अनेकों प्रकार के मानसिक, शारीरिक और सामाजिक पाप उपज खड़े होते हैं। अभिमान, एक प्रकार का नशा है, जिसमें मदहोश होकर मनुष्य अपने को दूसरों से बड़ा और दूसरों को अपने से छोटा समझता है। वह इस बात को पसंद करता है कि दूसरे लोग उसकी खुशामद करें, उसे बड़ा समझें, उसकी बात मानें, जब इसमें कुछ कमी आती है तो वह अपना अपमान समझता है और क्रोध से सांप की तरह फुसकारने लगता है। वह नहीं चाहता कि कोई मुझसे धन में, विद्या में, बल में, प्रतिष्ठा में, बड़ा या बराबर का हो, इसलिए जिस किसी को वह थोड़ा सुखी सम्पन्न देखता है उसीसे ईर्षा, द्वेष करने लगता है। अहंकार की पूर्ति के लिए अपनी सम्पन्नता बढ़ाना चाहता है। सम्पन्नता सद्गुणों से, श्रम से, लगातार परिश्रम करने से मिलती है। पर अभिमान के नशे में चूर व्यक्ति इस सीधे साधे मार्ग पर चलने में समर्थ नहीं होता वह अनीति और बेईमानी पर उतर आता है।

अवमान का अर्थ है—आत्मा की गिरावट। अपने को दीन, तुच्छ, अयोग्य, असमर्थ, समझने वाले लोग संसार में दीन हीन बन कर रहते हैं। उनकी प्रतिभा कुंठित होजाती है, कोई साहसिक कार्य उनसे बन नहीं पड़ता। सम्पन्नता प्राप्त करने और अपने ऊपर होने वाले अन्याय को हटाने के लिए जिस शौर्य की अवश्यकता है वह अवमान ग्रस्त मनुष्य में नहीं होता। फल स्वरूप वह न तो समृद्ध बन पाता है और न अन्याय के चंगुल से छूट पाता है। उसे गरीबी घेरे रहती है और कोई न कोई सताने वाला, आये दिन अपनी तीर कमान ताने रहता है। इन कठिनाइयों से बचने के लिए उसे निर्बलता परक अनीतियों का आश्रय लेना पड़ता है। चोरी, ठगी, कपट, छल, दंभ, असत्य, पाखंड, व्यभिचार, खुशामद जैसे दीनता सूचक अपराधों को करना पड़ता है। मोह, ममता, भय, आशंका, चिन्ता, कातरता, शोक, पश्चाताप, निराशा, कुढ़न, सरीखे मनोविकार उसे घेरे रहते हैं।

आत्म ज्ञान एवं आत्म सम्मान, को प्राप्त करना और उनकी रक्षा करने के लिए मनुष्योचित मार्ग अपनाना यह जीवन का सतोगुणी स्वाभाविक क्रम है। यह शृंखला जब विश्रृंखलित होजाती है, आत्मिक सन्तुलन बिगड़ जाता तो पाप करने का सिलसिले चल पड़ता है। आत्मज्ञान को प्राप्त करने वाले और आत्म सम्मान की रक्षा करने वाले ही पाप से बचते हैं और वे ही जीवनोद्देश्य पूरा करते हैं। पाठको! अभिमान तथा अवमान से बचो और आत्मिक संतुलन कायम रखो।—

परलोक कहां है ?

भू लोक का परिचय

स्वर्ग और नरक को ढूंढ़ने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं, वह यहीं—इस पृथ्वी पर ही मौजूद है। इसी लोक में अनेकों व्यक्ति सुरपुर का आनन्द लूट रहे हैं, उन्हें सब प्रकार के ऐश आराम हैं। स्वर्ग-लोक के जो वर्णन कथा पुराणों में सुने जाते हैं वे सब उनके लिए इसी लोक में मौजूद हैं। दूसरी ओर अनेकों व्यक्ति ऐसे भी हैं जिनको यमपुरी की समस्त यातनायें हर घड़ी सामने उपस्थित रहती हैं। अस्पतालों, जेलखानों, पागलखानों, अपाहिज गृहों, कोढ़ी खानों में जाकर हम देख सकते हैं कि मनुष्य कितनी पीड़ायें सहते हैं। अनेकों मनुष्यों के लिए अपनी जिन्दगी का जीना तक कठिन होजाता है, वे तत्कालीन वेदना से छुटकारा पाने के लिए विष खाकर, जलाशय में डूब कर, फांसी लगाकर, तेल छिड़क कर, रेल के नीचे लेटकर तथा अन्य किसी प्रकार से आत्म-हत्या कर लेते हैं। मृत्यु में बड़ा कष्ट होता है पर आत्म-हत्या करने वाला मनुष्य अपने जीवन को मृत्यु से भी अधिक कष्ट दायक अनुभव करता है तभी तो वह इस प्रकार के भयंकर कामों के लिए तैयार हो जाता है। यह घटनाऐं बताती हैं कि नरक इस लोक में भी मौजूद है।

नन्दन बन से बगीचे, यक्ष गन्धर्वों से गायक अप्सराओं सी तरुणियां, बृहस्पति से देव गुरू, कुवेर से भण्डारी, पुष्पक बिमान से वाहन, इस लोक में भी मौजूद हैं। इन्द्र बज्र की समता करने वाला परमाणु बम यहां मौजूद है। वरुण, यम, अग्नि,पवन,पूषा,विश्वेदेवा इस लोक में चौकीदार की तरह हाथ बांधे हर वक्त सेवा के लिए खड़े रहते हैं। विज्ञान ने समस्त देवताओं की शक्तियों को छीनकर मनुष्य की सेवा में उपस्थित कर दिया है। लक्ष्मी, सरस्वती तथा चण्डी के दर्शन करने हों तो किसी अन्य लोक में जाने की जरूरत नहीं। उन्हें इसी लोक में उपलब्ध किया जासकता है सुरपुरी की विशेषतायें इस लोक में मौजूद हैं।

नरक को ढूंढ़ने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। रौरव, कुम्भीपाक, ताम्रपत्र, असिपत्र आदि चौबीस नरकों के स्थान पर यहां चौबीस सौ नरक देखे जा सकते हैं। किसी घृणित, भयंकर, कष्ट, साध्य और दुसह वेदना युक्त बीमारी में जिन्हें स्वयं फंसने का कभी अनुभव हुआ है या ऐसे रोगी की जिनने परिचर्या की है वे जानते हैं कि किसी नरक में इससे अधिक दुःख न होगा। एकसौ पांच छः डिग्री के बुखार से जिसका रोम-रोम जल रहा है, हड़फूटन और प्यास की बेचैनी से बेहोशी तक आजाती है उन्हें 'उष्ण ताप' नरक से क्या कम कष्ट है? कफ जब गले को रूंध देता है और जब न तो अच्छी तरह सांस ली जाती है न जिह्वा से शब्द निकलता है, तब यमदूत द्वारा गला घोंटने के कष्ट में और क्या अन्तर रह जाता है? गर्भ में बन्द बालक किस कुम्भी पाक से अच्छी दशा में है? आंख, दाढ़ के दर्द, जब उग्र रूप से उठते हैं तो मनुष्य छटपटा जाता है। प्रसव के समय मातायें कितनी पीड़ा सहती हैं। बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काट लेने पर, अग्नि से जल जाने पर, भारी आघात लगने पर या भयंकर फोड़ा उठने पर जो पीड़ा होती हैं वे नरक की किस पीड़ा से कम होंगी।

नरक में नियत संख्या में यमदूत होते हैं, उन यमदूतों की खास तरह की शकल और खास तरह पोशाक होती है जिससे आसानी से उन्हें पहचाना जा सकता है पर यहां तो अगणित यमदूत हमारे चारों ओर फिरते हैं। उनकी शकल और पोशाक भले आदमियों की सी होने के कारण और भी अधिक गहरी चोट लगती है। नरक के यम दूतों को तो जीव पहचान लेता है और उनकी चोटों के लिए तैयार होजाता है। पर इस लोक के यमदूत उनसे भी भयंकर हैं। वे पहचाने नहीं

जाते और अकस्मात ऐसे घातक आक्रमण करते हैं कि मनुष्य तिलमिला जाता है, उनके चोट करने के निर्लज्ज तरीके को देखकर यमदूत भी सकुच जाते हैं। मित्र बन कर दगा करने वाले, साधु बनकर ठगने वाले, हितू बनकर विश्वास घात करने वाले, रस दिखाकर विष पिलाने वाले, छाती से लगाने का प्यार दिखा कर कलेजा खा जाने वाले, यम दूत वहां गली गली में मिल सकते हैं। ठग, चोर हत्यारे, व्यभिचारी, लम्पट विश्वास घाती, लबार, झूंठे, चुगल खोर, बेईमान, कपटी, धूर्त, अत्याचारी, अन्यायी, पर पीड़क, निर्लज्ज, कुकर्मी, नास्तिक, लुटेरे, निर्दय, क्रूर, निष्ठुर, स्वभावके साक्षात् शैतान जगह२ मौजूद हैं। बेचारे यमदूत अपने सीधे साधे दण्ड अस्त्रों से जीव को एक सीधे साधे नियत तरीके से मारते पीटते होंगे पर इस लोक के सफेद पोश यमदूत दूसरों को शारीरिक और मानसिक यातनाऐं पहुंचाने के लिए जो जो प्रपंच रचते हैं उन्हें देखकर नरक के यमदूत हैरत में रह जायंगे। उन बेचारों से सात पुश्त में भी ऐसे मायावी आक्रमण करना शायद न आवे।

दृष्टि पसार कर हम यदि दूर दूर तक देखें और सुखी, सम्पन्न, समृद्ध लोगों के जीवन के आनन्द तथा दुखी, दरिद्र, पीड़ित, लोगों के कष्टों पर कुछ देर विस्तृत विचार करें, दोनों प्रकार के लोगों के जीवन पूरे चित्र अपने कल्पना क्षेत्र में खींचें तो इसी लोक में स्वर्ग और नरक का अस्तित्व हमें मिल जायगा। सुख भी इतना है कि उससे बढ़कर स्वर्ग में भला और क्या अधिक सुख होगा ? दुख भी इतना है कि उन दुखों के आगे नरक लोक में और अधिक भला क्या दुख होगा ? मृत्यु तुल्य ही नहीं आत्म हत्या के लिए प्रेरित करने वाले मृत्यु से भी अधिक दुख इस लोक में मौजूद हैं, यह कष्टों की अन्तिम सीमा है। इन सब बातों पर विचार करते हुए सत् पुरुषों ने कहा है कि 'स्वर्ग और नरक इसी लोक में हैं।' सचमुच पूर्ण तृप्ति दायक और अत्यन्त उद्विग्न करने वाली स्थिति इस लोक में मौजूद है। स्वर्ग और नरक का पूरा पूरा अस्तित्व इस लोक में उपलब्ध है।

परलोक को भोग लोक कहा जाता है। परलोक में भले या बुरे भोग भोगने पड़ते हैं। इस लोकमें जहां कर्म करने की सुविधा है वहां कर्म फल के भोग भोगने में विवशता भी है। कोई व्यक्ति सुकर्म करके उसके सुफल से बचना चाहे तो यह उसके हाथ की बात नहीं, इसी प्रकार बुरे कर्म करके दण्ड से बचना भी संभव नहीं। रोगी, घायल अपाहिज तथा अन्य दुखों में पड़े हुए व्यक्ति यह कब चाहते हैं कि उन्हें दुख सहना पड़े तो भी चूंकि इस लोक में परलोक भी मौजूद है, उस परलोक के नियमानुसार उन्हें नरक भोगने के लिए विवश होना पड़ता है। उसी प्रकार चाहने को तो सुख समृद्धि सभी चाहते हैं पर चाहना कितनों की पूरी होती है ? कितने ही जीव किसी ऐसे परिवार में उत्पन्न होते हैं जहां अनायास ही अपारसुख साधन मौजूद रहते हैं। कर्मभोग उन्हें उस स्थितिमें ले दौड़ताहै। चूंकि परलोक इसलोक में मौजूद है इसलिए स्वर्ग सुख की स्थिति भी अधिकारी लोगों के सामने परलोक के नियमानु-सार अपने आप सामने आजाती है। इस लोक में परलोक का कार्यक्रम यथावत् चल रहा है उस कार्यक्रम के अनुसार सभी प्राणी स्वर्ग और नरक के सुख दुख का रसास्वादन करते हैं।

भूलोक के परलोक में सुख को स्वर्ग और दुख को नरक कहते हैं। जिन्हें इस लोक में सुख प्राप्त है वे स्वर्ग भोग रहे हैं और जिन्हें दुख प्राप्त हो रहा है वे बेचारे नरक भोग रहे हैं। यह एक मोटी परिभाषा है। इतना कह देने से ही काम न चलेगा अब हमें बारीकी में जाना होगा। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें रुपया पैसा, धन, दौलत, सोना, चांदी की किसी प्रकार की कमी नहीं। नौकर, चाकर, महल, मोटर, सब कुछ है। रूपवती रमणियाँ जिनकी कृपा कोर की ओर निहारती रहती हैं। ऐश आराम के तरह तरह के साधन

मौजूद हैं। इतना सब होते हुए भी उन्हें चैन नहीं, दिन रात अशान्ति की ज्वाला में जलते रहते हैं, रात को नींद नहीं आती, सारी सुख सामिग्री फीकी मालूम होती है। हमें ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं कि अमुक राजकुमार या धनी व्यक्ति ने अपने ऐश आराम में लात मार दी और अमुक त्याग पूर्ण रास्ता ग्रहण कर लिया, इससे प्रतीत होता है कि उन्हें उस सुख सामिग्री में वास्तविक सुख नहीं मिला।

हमारा व्यक्ति गत रूप से अनेक धनी मानी और समृद्ध व्यक्तियों से सम्पर्क रहता है वे अपने हृदय की कथा खोल कर हमारे सामने अपने मन का भार हलका करते हैं। पिछली एक चौथाई शताब्दी के अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि सुख सामिग्री होते हुए भी बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो सुखी कहे जा सकते हैं। अधिकांश में तो वे गरीब और अभाव ग्रस्त लोगों से भी अधिक दुखी पाये जाते हैं।

अब दूसरी ओर देखिए इस दुनियां में ऐसे लोग हैं जिनके पास धन सम्पति नहीं है। साथ ही कष्ट भी उठाते हैं फिर भी वे स्वर्ग वासी कहे सकते हैं। साधु, सन्त ब्राह्मण, तपस्वी, महात्मा जनों के पास धन सम्पत्ति नहीं होती, उनके पास जीवन निर्वाह को अन्न वस्त्र जैसी साधारण वस्तुएं भी पर्याप्त मात्रा में नहीं होती धन के अभाव में प्रायः कुछ न कुछ असुविधाएं उनके सामने खड़ी ही रहती है। कितने ही परोपकारी मनुष्य संसार के हित के लिए कष्ट सहते हैं। दधीचि ने अपनी हड्डियां दीं, हरिश्चन्द्र ने अपने को तथा स्त्री पुत्रों को बेचा, मोरध्वज ने अपने पुत्र को दे डाला, शिवि ने अपना मांस काट कर दिया। बन्दा वैरागी, हकीकत राय आदि ने नाना विधि कष्ट उठाये मीरा और दयानन्द ने विष के प्याले पिये, प्रहलाद ने पिता के अत्याचार सहे, भारत के स्वाधीनता संग्राम में लाखों व्यक्तियों ने जेल, लाठी, गोली, तथा फांसी सहीं, यह कष्ट सहन यह दुख, नरक नहीं कहा जा सकता। ऐसे कष्टों में भी स्वर्ग का सुख छिपा होता है। स्वेच्छा से स्वीकार किया हुआ कष्ट तप कहलाता है। तप बाहर से कष्ट जैसा दिखाई पड़ता है पर वास्तव में वह दुख नहीं है।

सुख और दुख का निर्णय वस्तुओं के होने न होने के आधार पर नहीं किया जा सकता। मौज से पड़े रहना या कष्ट में दिन व्यतीत करना भी स्वर्ग नरक की पहचान नहीं है। क्यों कि न तो धनी लोग सुखी ही देखे जाते हैं और न अभाव ग्रस्तों या कठिनाइयों में दिन व्यतीत करने वालों को दुखी ही कहा जा सकता। शास्त्रकारों ने भूलोक के सुखों में शारीरिक मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य को स्वर्ग बताया है और इन स्वास्थ्यों का अभाव ही नरक है। जो शरीर से स्वस्थ है उसे बीमारियों के आक्रमण का आयेदिन शिकार न होना पड़ेगा। रोगों का उन पर हमला होता है जिनका शरीर दुर्बल होता है बलवान शरीर वाला मनुष्य दैहिक पीड़ाओं से प्रायः बचा रहता है। इन्द्रियों के बलवान रहने से भोग शक्ति सुस्थिर रहती है और उसे साधारण भोग सामिग्री में भी वह आनन्द आता है जो अमीरों को बहु मूल्य ऊंचे दर्जे की वस्तुओं में उपलब्ध नहीं होता। जिसकी पाचन शक्ति ठीक है, जिसे कड़ाके की भूख लगती है उसे जौ की रोटी, चने के साग से खाते हुए वह आनन्द आता है जो कब्ज और जुकाम से पीड़ित रहने वाले व्यक्ति को छप्पन व्यंजनों से भरे थाल में नसीब नहीं हो सकता। काम शक्ति स्वस्थ रहने से मजूर और उसकी स्त्री, मजूरिनी, इन्द्र और अप्सरा का आनंद अनुभव करते हुए रात बिताते हैं। पर जिन्हें प्रदर, प्रमेह, शीघ्र पतन, नपुंसकता आदि घेरे हुए हैं वे पति पत्नी कितने ही रूपवान हों, कितनी ही विलास सामिग्री सम्पन्न हों दांपति जीवन का सुख नहीं उठा पाते। रात्रि आती है पर उन्हें चिढ़ाने, तिरष्कृत करने और कुढ़ाने आती है। जीविका का प्रश्न भी स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। जो मजबूत है, निरोग है, वह धरती में लात मार कर अपने

निर्वाह के लिए चाहे जहां से जीविका उपार्जित कर लेगा। उसे निर्वाह के लिए जीविका कमाने की कभी चिंता नहीं करनी पड़ती।

शारीरिक स्वस्थता स्वयं एक सुख है जिसमें हर वक्त ताजगी, प्रसन्नता, निश्चिन्तता तथा खुशी छाई रहती है। आत्म विश्वास, साहस, पुरुषार्थ और उत्साह की तरङ्गें उठती रहती हैं। निरोग मनुष्य अपने आप में एक पूर्णता अनुभव करता है। इन्द्रियां सशक्त और क्रिया शील रहने पर दीर्घ काल तक अपना काम ठीक प्रकार करती रहती हैं। बुड्ढे होजाने पर भी नेत्रों की ज्योति ठीक रहती है, दांत मजबूत बने रहते हैं। कानों से ठीक सुनाई देता है। भोजन करते समय वे नित्य एक तृप्ति दायक सुख का आनन्द लूटते हैं। उसके दाम्पति जीवन में बड़ा संतोष जनक सुख रहता है, जीविका उपार्जन करने में वे कभी पीछे नहीं रहते। धनी होना दूसरी बात है पर इतना वे अवश्य कमालेते हैं कि जीवन क्रम पूर्ण सुविधा के साथ चलता रहे। यह सब सुख ऐसे हैं जिनके लिये बड़े२ अमीर तरसते हैं।

पैसे की अधिकता से सुख साधन तो अवश्य मिल जाते हैं पर साथ ही साथ उस पैसे की छीन झपट करने के इच्छुक भी इतने पैदा होजाते हैं कि उनसे बचाव करने उनके आक्रमण को रोकने के लिए असाधारण रूप से चिन्तित रहना पड़ता है। दूसरे उस पैसे की अधिकता के कारण अनेकानेक दुर्गुण पैदा होजाते हैं, उन दुर्गुणों के दुःखद परिणाम नित नये क्लेश उत्पन्न करते रहते हैं। इन तीनों प्रकार की बेचैनियों में मनुष्य का स्वास्थ्य क्षीण होजाता है और वह स्वस्थता में मिलने वाले सुखों से बञ्चित हो जाता है। यही कारण है कि धनी लोग सुखी बहुत कम देखे जाते हैं। इस संसार में, भू लोक में सुख उन्हें है जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हैं। एक निरोग व्यक्ति—चाहे वह निर्धन ही क्यों न हो इतना सुखी रहता है, जितना सुखी धनवान् व्यक्ति अपने सारे धन के बदले में भी नहीं होसकता।

शारीरिक सुख के बाद मानसिक सुख है, सुशिक्षा, विद्या, विचारशीलता, समझदारी, सुविस्तृत जानकारी, अध्ययन, चिन्तन, मनन, सत्संग, अनुभव आदि के द्वारा मन और मस्तिष्क को सुसंस्कृत बना लेना, मानसिक स्वस्थता है। शिक्षा के द्वारा डाक्टर, वकील, इञ्जीनियर, अफसर, वैज्ञानिक, लेखक, सम्पादक, बाजीगर, शिल्पी, व्यापारी, कलाकार, मूर्तिकार, चित्रकार, सङ्गीतज्ञ, नट आदि अपनी-अपनी महत्ता प्रकट करते हैं। अपनी योग्यताओं के बल पर संसार को महत्व पूर्ण लाभ पहुंचाते हैं और अपने आप में सफलता का सन्तोषदायक आनन्द अनुभव करते हैं, सम्पत्ति कमाते हैं, यशस्वी बनते हैं, तथा मरने बाद नई पीढ़ी के लिए एक आदर्श छोड़ जाते हैं।

सुशिक्षा ने ही इस संसार में महात्मा, भक्त, ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी, गुणी, विद्वान्, महापुरुष, पथप्रदर्शक, नेता, देवदूत, पैगम्बर तथा अवतार पैदा किये हैं। यदि दुनियाँ में सुशिक्षा न रहे तो मनुष्य एक बहुत ही दुर्बल और असहाय पशु मात्र रह जायगा। ज्ञान ने ही मनुष्य को तुच्छ पशु से ऊंचा उठाकर सृष्टि का सम्राट बना दिया है। जीवन का सुख इस विद्याबल पर भी बहुत हद तक निर्भर है। अशिक्षित, मूर्ख, बेवकूफ, भोंदू या अज्ञानी पुरुष एक प्रकार का पशु है, उसे पशुवत् भारभूत जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अपनी शक्तियों को न तो वह जानता है न उन्हें विकसित कर पाता है और न उनसे लाभ उठा पाता है। किन्तु जो लोग बुद्धिमान हैं वे अपने बुद्धिबल से इस जीवन में ही स्वर्ग सुख का आनन्द लूटते हैं।

विवेकवान् व्यक्ति अनेक प्रकार के मानसिक क्लेश और कष्टों से बचे रहते हैं। संसार में प्रकृति के क्रम से वस्तुओं का परिवर्तन होता है। स्वजनों की मृत्यु, विछोह, घाटा, चोरी, भूल, टूट, फूट आदि के कारण अनेकों प्रकार की अनिच्छित घटनायें सामने आती हैं। अविवेकी पुरुष

अनिच्छित घटनाएं घटित होते देखकर मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं और शोक क्लेश, चिन्ता, बेचैनी, पीड़ा, एवं अशांति अनुभव करते हुए बुरी तरह रोते कलपते हैं। परन्तु विचारशील पुरुष इस गति शील संसार की इन नित्य घटित होने वाली घटनाओं से विचलित नहीं होते और इस शोक सागर में डूबने से बच जाते हैं जिसमें कि अज्ञानी पुरुष डूब कर अपने जीवन को बुरी तरह घुला डालते हैं। स्वास्थ्य की भांति शिक्षा भी अपने आप में स्वयं सुख है। सुशिक्षित मनुष्य के अन्तःकरण में एक बल रहता है। सद्विचारों, सुस्थिर विचारों और महत्व पूर्ण विचारों से उसका मन सदा प्रसन्न, प्रफुल्ल तथा सन्तुष्ट रहता है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बाद नैतिक स्वास्थ्य का स्थान है। स्वास्थ्य के इन तीन भागों को मिलाकर पूर्ण स्वस्थता बनती है। ईमानदारी, धर्म परायणता, सदाचार, संयम से अपने आपको पवित्र बनाना तथा दूसरों के साथ प्रेम, परोपकार, सेवा, उदारता एवं मधुरता का व्यवहार करना यह नैतिक स्वास्थ्य की परिभाषा है। अपनी असुविधा से दूसरों की असुविधा का अधिक ध्यान रखना और अपने सुख को पहला स्थान देना, यह नैतिक स्वास्थ्य की कसौटी है। इस कसौटी पर जिनकी विचार धारा और कार्य प्रणाली खरी उतरती है वे नैतिक दृष्टि से स्वस्थ हैं।

नैतिक स्वास्थ्य ठीक होने से समाज का बड़ा मधुर सहयोग प्राप्त होने लगता है। घर में, घर से बाहर, समाज में, देश में, विदेश में ऐसे स्वस्थ मनुष्य को सभी अपनाते हैं। सहयोग करते हैं, सहायता देते हैं, प्रेम करते हैं, प्रशंसा करते हैं तथा छाती से लगाते रहते हैं। नैतिक स्वास्थ्य एक खिला हुआ सुगन्धित पुष्प है, जिसे देखने को, सूंघने को, छूने को, सभी लोग ललचाते हैं। जो ईमानदार है, सच्चा है, विश्वासी है, निष्कपट है, मधुर भाषी है, वफादार है, प्रेम करता है, उदार है, सेवा भावी है, ऐसे व्यक्ति को पाकर हर कोई अपने को धन्य मानता है। पिता पुत्र को, पत्नी पति को, भाई भाई को, मित्र मित्र को, मालिक नौकर को, इन गुणों से युक्त पाकर फूला नहीं समाता। नैतिक स्वस्थता से आधार पर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। सच्चा मनुष्य देवताओं की तरह महान् और बन्दनीय है। नैतिकता में हजार हाथियों की बराबर बल बताया जाता है। वस्तुतः ईमानदार मधुर और उपकारी स्वभाव के मनुष्य में अद्भुत बल होता है। उसे अपार आनन्द का अपने अन्तःकरण में निरन्तर अनुभव होता रहता है।

जिसे सच्चे हृदय से प्यार करने वाले, सच्ची सहानुभूति रखने वाले, आदर करने वाले अनेकों मनुष्य प्राप्त हैं। उसके लिये यह लोक ही स्वर्ग है। आत्मीयता, प्रेम, विश्वास और आदर भाव रखने वाले लोगों के बीच में रह कर मनुष्य को जो सुख मिलता है उसका रसास्वादन करने वाले भुक्त भोगी ही जानते हैं। गरीबी होते हुए भी, प्रेम और विश्वास के वातावरण में रहते हुए जो आनन्द मिलता है, उस पर अविश्वासी वातावरण की अमीरी को निछावर किया जा सकता है। नैतिकता का विकाश मनुष्य के आस्तित्व का, व्यक्तित्व का, विकाश है। इसे आध्यात्मिक उन्नति भी कहते हैं। जिसकी नैतिकता जितनी ही विकसित है, उसे अपने अन्तःकरण में सदा आनन्द का अनुभव होगा और चूंकि संसार दर्पण के समान है, इसमें वैसी ही शकलें दीखती हैं जैसे कि हम स्वयं होते हैं। अपने आपको भला बना लेने पर दुनियां के भले तत्व अपने सामने आजाते हैं और उसे ऐसा प्रतीत होता है, कि इस दुनियां में सच्चे, सज्जन, प्रेमी, भले एवं उत्तम स्वभाव के मनुष्य ही भरे पड़े हैं। हर जगह उसे अनुकूलता, मधुरता और शांति का वातावरण दृष्टिगोचर होता है।

शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक स्वस्थता में वह शक्ति है कि भूः लोक को स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण बना देती है। जिन साधनों की जीवन

को आनन्दित्त बनाने के लिये आवश्यकता है वे सभी उसे उपलब्ध हो जाते हैं। हो सकता है कि उसके पास लाख करोड़ की सम्पत्ति न हो पर जो कुछ स्वस्थ मनुष्य के पास होता है वह इतना अधिक एवं इतना वास्तविक होता है कि उसकी तुलना में चांदी का मैदान और सोने का पहाड़ भी तुच्छ है, जिन्हें यह त्रिविधि स्वास्थता प्राप्त है उनके लिये यह परमात्मा का परम पुनीत उपवन-संसार-सब प्रकार आनन्द मय है। सब ओर उसे प्रसन्नता और सुख शांति का झरना झरता दृष्टि गोचर होता है। प्रभु की पुण्य कृति यह वसुधा वसुन्धरा, माता की गोद के समान सुखद दृष्टि गोचर होती है। शास्त्र कहता है—"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादऽपि गरीयसी।" स्वस्थ मनुष्य इस शास्त्र बचन की सत्यता को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उसे लगता है कि जन्म-भूमि धरती माता का भू लोक, स्वर्ग से कम तो किसी प्रकार नहीं, वरन् उससे अधिक ही है।

शरीर को स्वस्थ रखना, बुद्धि को विकसित करना और नीतिवान् बनाना तीनों ही बातें मनुष्य के हाथ में हैं। कुमार्ग पर जाने से-नीच, तामसिक, दुर्गुणों को अपनाने से—शरीर नष्ट होता है, बुद्धि नष्ट होती है और सामाजिक प्रेम भाव तथा विश्वास नष्ट होता है। यह सर्व नाश ही नरक है। बुरे कामों के लिये जिसकी निन्दा होती है, जो अयोग्यता अथवा दीनता के कारण तिरष्कृत होता है, उसे नरकगामी कहना चाहिये। सद्गुणों के द्वारा जो दूसरों का मन अपनी मुट्ठी में रखता है, जिसे समीप देखकर दूसरों के हृदय की कली खिल जाती है, जिसके विचार तथा कार्य सम्माननीय हैं, वह स्वर्ग गामी कहा जायगा।

जिन्हें भू लोक के परलोक में, इसी जीवन में, स्वर्ग का रसास्वादन करना हो उन्हें चाहिये कि अपने शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक स्वास्थ्य को उन्नत बनावें। इस उन्नति के साथ-साथ मनुष्य क्रमशः स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ता जाता है और नरक की यातनाओं से दूर हटता जाता है।

अति सर्वत्र वर्जयेत्।

शास्त्रकारों ने सब कामों में अति का विरोध किया है। कुछ विशिष्ठ आत्माएं असाधारण तेज अपने साथ लेकर आती हैं, उनकी गति विधि आरंभ से ही असाधारण होती हैं, उनके कार्य भी लोकेत्तर होते हैं। ऐसी विशिष्ठ आत्माओं की बात छोड़ कर सर्वसाधारण के लिए मध्यम मार्ग ही उचित तथा उपयुक्त बैठता है।

भगवान बुद्ध ने 'मज्झिम मग्ग' का—मध्यम मार्ग का—आचरण करने के लिए सर्वसाधारण को उपदेश किया है। बहुत तेज दौड़ने वाले जल्दी थक जाते हैं और बहुत धीरे चलने वाले अभीष्ट लक्ष तक पहुंचने में पिछड़ जाते हैं। जो मध्यम गति से चलता है वह बिना रुके, बिना पिछड़े उचित समय पर अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंच जाता है।

हाथी जब किसी नदी को पार करता है तो अपना हर एक कदम बड़ी सावधानी से रखता है। आगे की जमीन को टटोल कर उस पर एक पैर जमाता है—जब देख लेता है कि कोई खतरा नहीं तो उस पर बोझ रखकर पिछले पैरों को हटाता है। इस गति विधि से वह उस भारी काम को पूरा कर लेता है। यदि वह जल्दबाजी करे तो वह गहरे पानी में डूब सकता है, किसी दलदल में फंस सकता है या किसी गड्ढे में औंधे मुंह पटक खाकर प्राण गंवा सकता है। साथ ही यदि वह कदम बढ़ाने का साहस न करे, पानी की विस्तृत धारा को देखकर डर जाय तो नदी पार नहीं कर सकता। हाथी बुद्धिमान प्राणी है। वह अपने शरीर के भारी भरकम डीलडौल का ध्यान रखता है, नदी पार करने की आवश्यकता अनुभव करता है, पानी को विस्तृत फैलाव को समझता है और पार करते समय आने वाले खतरों को समझता है। इन सब बातों का ध्यान रखते हुए वह अपना कार्य गंभीरता पूर्वक आरंभ

करता है। जहाँ खतरा दीखता है वहाँ से पैर पीछे हटा लेता है और फिर दूसरी जगह होकर रास्ता ढूंढ़ता है। इस प्रकार वह अपना कार्य पूरा कर लेता है।

मनुष्यको भी हाथी कीसी बुद्धिमानी सीखनी चाहिए और अपने कार्यों में मध्यम गति से पूरा करना चाहिए विद्यार्थी कितनी ही उतावली करे एक दो महीने में अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर सकता, कर भी लेगा तो उसे जल्दी ही भूल जायगा। क्रमक्रम से, नियतकाल में पूरी की हुई शिक्षा ही मस्तिष्क में सुस्थिर रहती है। पेड़, पौदे, वृक्ष, पशु-पक्षी सभी अपनी नियत अवधि में परिपक्व, फल देने लायक तथा वृद्ध होते हैं। यदि उस नियत गति विधि में जल्द बाजी की जाय तो परिणाम बुरा होता है। हमें अपनी शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता, मनोभूमि, परिस्थिति आदि को ध्यान में रख कर निर्धारित कार्यों को पूरा करना चाहिए।

बहुत खाना, भूख से ज्यादा खाना बुरा है-- इसी प्रकार बिलकुल न खाना भूखे रहना बुराहै। अतिका भोग बुरा है पर अमर्यादित तप भी बुरा है। अधिक विषयी क्षीण होकर असमय में ही मर जाते हैं, पर जो अमर्यादित अतिशय तप करते हैं, शरीर को अत्यधिक कस डालते हैं वे भी दीर्घ जीवी नहीं होते। अति का कंजूस होना ठीक नहीं, पर इतना दानी होना भी किस काम का कि कल ही खुद को दाने दाने का मुहताज बनना पड़े। आलस्य में पड़े रहना हानिकारक है पर सामर्थ्य से अधिक श्रम करते रह कर जीवनी शक्ति को समाप्त कर डालना भी लाभदायक नहीं। कुबेर बनने की तृष्णा में पागल बन जाना या कंगाली में दिन काटना दोनों ही स्थितियां अवांछनीय हैं।

नित्य मिठाई ही खाने को मिले तो उससे अरुचि के साथ साथ दस्त भी शुरू होजायंगे। भोजन में मीठे की मात्रा बिलकुल न हो तो चमड़ी पीली पड़ जायगी। बहुत घी खाने से मंदाग्नि होजाती है पर यदि बिलकुल घी न मिले तो खून खराब होजायगा। बिलकुल कपड़े न हों तो सर्दी में निमोनियाँ होजाने का और गर्मी में लू लगजाने का खतरा है पर जो कपड़ों के परतों से बेतरह लिपटे रहते हैं उनका शरीर पके आम की तरह पीला पड़ जाता है। बिलकुल न पढ़ने से मस्तिष्क का विकाश नहीं होता पर दिन रात पढ़ने की धुन में व्यस्त रहने से दिमाग खराब होजाता है आंखें कमजोर पड़ जाती हैं।

घोर, कट्टर, असहिष्णु सिद्धान्त वादी, बनने से काम नहीं चलता। दूसरों की भावनाओं का भी आदर करके सहिष्णुता का परिचय देना पड़ता है। अन्ध भक्त बनना या अविश्वासी होना दोनों ही बातें बुरी हैं। विवेक पूर्वक हंस की भांति नीर क्षीर का अन्वेषण करते हुए ग्राह्य और अग्राह्य को प्रथक करना ही बुद्धिमानी है। देश, काल और पात्र के भेद से नीति, व्यवहार और क्रियापद्धति में भेद करना पड़ता है यदि न करें तो हम अतिवादी कहे जायंगे। अतिवादी-आदर्श तो उपस्थित कर सकते हैं, पर नेतृत्व नहीं कर सकते।

आदर्श बाद हमारा लक्ष होना चाहिए,हमारी प्रगति उसी ओर होनी चाहिए, पर सावधान! कहीं अपरिपक्व अवस्था में ऐसी बड़ी छलांग न लगाई जाय, जिसके परिणाम स्वरूप टांग टूटने की यातना सहनी पड़े। कड़े कार्यों को पूरा करने के लिए मजबूत व्यक्तित्व की आवश्यकता है। मजबूत व्यक्तित्व धैर्यवानों का होता है। उतावली करने वाले छछोरे या रेंगने वाले आलसी नहीं, महत्व पूर्ण सफलताऐं वे प्राप्त करते हैं जो धैर्यवान् होते हैं, जो विवेक पूर्वक मजबूत कदम उठाते हैं और जो अतिवाद के आवेश से बचकर मध्यम मार्ग पर चलने की नीति को अपनाते हैं। नियमितता, दृढ़ता, एवं स्थिरता के साथ समगतिसे कार्य करते रहने वाले व्यक्तियों के द्वारा ही महान कार्यों का सम्पादन होता है।

देवऋण का परिशोध

(श्री० दौलतरामजी कटरहा, बी० ए० दमोह)

देवता अनेक हैं पर बृहदारण्यक उपनिषद् के मतानुसार इनमें से तेतीस देवता ही मुख्य हैं। (एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाः) । यथा आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, इन्द्र और यज्ञ । आठ वसुदेवता परोक्षतः यथाक्रम से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, भू, भुव और स्व हैं। किंतु बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार वे सब यथाक्रम से पृथिवी, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, स्वर्ग, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं। पांच कर्मेन्द्रियां (मुख, हस्त, पाद, उपस्थ और वायु), पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा, त्वक्) और वागिन्द्रिय (मन) ही एकादश रुद्र देवता हैं किन्तु बृहदारण्यक के कथनानुसार दश प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय) और आत्मा ही रुद्र देवता हैं । द्वादश आदित्य यथाक्रम से वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन एवं चैत्र हैं। इन्द्र देवता मेघ है और यज्ञ देवता प्रजापति है।

उपरोक्त देवताओं की पूजा को ही नित्य नैमित्तिक कर्म कहते हैं। इन्हीं कर्त्तव्य कर्मों द्वारा देव ऋण का परिशोध होता है । वसु और रुद्र देवताओं की पूजा को नित्य कर्म तथा आदित्य इन्द्र और यज्ञ देवताओं की पूजा को नैमित्तिक कर्म कहते हैं ।

पृथिवी को पवित्र रखने का प्रयत्न करते रहना अर्थात् मकान, आंगन, हाट, बाट, घाट, तथा गांव के समस्त स्थानों को स्वच्छ एवं निर्मल रखना पृथिवी देवता की पूजा है। उसी प्रकार कूप, तालाब, नदी, नाले एवं जलपात्रों को स्वच्छ एवं निर्मल रखना, जिससे कि जल सदा सर्वदा सर्वत्र ही पवित्र अवस्था में मिल सके जल देवता की पूजा है। शुष्क काष्ठ के ईंधन, स्वच्छ दीप एवं जलाने के लिये स्वच्छ तेल का व्यवहार करना जिससे कि हानिकारक धूम्र की अधिक उत्पत्ति न हो सके अग्निदेव की पूजा है। वायु को शुद्ध रखने के लिये चन्दन, कपूर, अष्ट सुगंधी एवं घृत जलाना वायु देवता की पूजा है। आकाश को जो कि विचारतरंगों और ध्वनि, विद्युत् आदि सूक्ष्म शक्तियों को वहन करने के लिये माध्यम का कार्य करता है, सुन्दर विचार तरंगों और ध्वनियों से गुंजरित करना तथा लड़ाई झगड़ा न करना, गाली आदि कटुवचन न बोलना सुमधुर गीत नृत्य आदि करना आकाश देवता की पूजा है। दूर दूर मकान बनाना, हवादार मकान बनाना और मकान को चारों ओर से फल फूल आदि के सुन्दर चित्रों से सुशोभित करना भू देवता की पूजा है। मृत शरीरों का अग्नि संस्कार करना भुव देवता की पूजा है। प्रातः काल में स्नान करने के उपरान्त एवं सन्ध्याकाल में भक्ति पूर्वक परमात्मोपासना करना स्व देवता की पूजा है।

वागिन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को बलवान् एवं स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करना, अर्थात् नित्यप्रति नियमित रूप से व्यवस्थित व्यायाम, आसन, प्राणायाम द्वारा शरीर के अङ्ग—प्रत्यङ्गों को बलवान बनाना, नित्य स्नान कर तथा शुद्ध वस्त्र पहिनकर और शुद्ध भोजन कर शरीर को स्वस्थ एवं चैतन्य रखना एवं देव, ऋषि, पितृ, नर और पशु इन सबको खिलाकर पश्चात् भोजन करना रूद्र देवताओं की पूजा है।

जिस महीने में जिस विधि से रहने से और जैसा खान-पान रखने से शरीर नीरोग, सबल और सुखी रहता है, उस महीने में उस विधि से रहना और वैसा ही खान-पान रखना, जिससे कि वर्ष सुखद हो, आदित्य देवताओं की पूजा का एक अंग है। उसी प्रकार जिस महीने में जिस वस्तु को बोने से प्रचुर शस्य उत्पन्न होता है, वह

सब विचार-पूर्वक उत्पन्न करना, समस्त ऋतुओं का ज्ञान प्राप्त कर विवाह, ऋतुदर्शन आदि संस्कारों का विधिपूर्वक पालन करना एवं ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का निर्वाह करना आदित्य देवताओं की पूजा है। सप्ताह, पक्ष, महीने और वर्ष के अन्त में और प्रत्येक विशेष दिन में अर्थात् सभा-सम्मेलन, उत्सव और शोभा यात्रा के अवसर पर यज्ञ एवं सार्वजनीन हवन करना जिससे कि उचित मात्रा में पर्जन्य की प्राप्ति हो मेघ देवता की पूजा है। मेघोदय के समय, वर्षा के समय, अन्नोत्पादन के समय, भोजन के समय एवं गर्भाधान समय विचार-पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करना, जिससे कि प्रजा की वृद्धि हो, यज्ञ देवता या प्रजापति की पूजा है। इस तरह पूजा करने से ही देव-ऋण का परिशोध होजाता है।

जो लोग उपरोक्त देवताओं की उपासना नहीं करते वे लोग अपने जीवन को दुखी बना लेते हैं। इसका यह प्रयोजन नहीं कि देव-ऋण का परिशोध न करने वालों से देवतागण क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेते हैं। देवताओं की पूजा न करने वाले व्यक्ति सुख समृद्धि से वंचित रहते हैं इसी को बाल-बुद्धि वाले व्यक्ति प्रतिशोध कहकर पुकारते हैं। प्रतिशोध सदैव क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, वैर आदि दुर्विकारों द्वारा प्रेरित होता है परंतु देवताओं में ये दूषित मनोविकार किंचिन्मात्र भी नहीं होते। वे तो समदर्शी होते हैं और उनमें तनिक भी पक्षपात नहीं होता। यह अवश्य है कि जो उनकी जितनी अधिक पूजा करता है उसे उतना ही अधिक शुभ फल मिलता है किंतु यह उनका पक्षपात नहीं है और न इससे उनके सब पर एक जैसे प्रेम होने के सिद्धान्त में बाधा ही पड़ती है। समदर्शन यह नहीं कि सबको जो पुरस्कार मिले उसमें साम्य हो किंतु वास्तविक समदर्शन तथा साम्यवाद यही है कि प्रत्येक को जो फल मिले वह उसके पुरुषार्थ के अनुसार हो। परीक्षक अधिक योग्यतापूर्ण प्रश्नोत्तरों पर अधिक गुण देता है, सौदागर अधिक रुपये देने वाले ग्राहक को अधिक वस्तु देता है और अग्नि अधिक घृत हवन करने वाले को अधिक सुगंध देता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को वस्तुएं भिन्न भिन्न परिमाण में ही प्राप्त होती हैं पर वे सबको ठीक ठीक हिसाब से और समभाव से ही वितरित की गई हैं, ऐसा ही कहा जायगा।

देवतागण पूर्ण काम होते हैं। उन्हें अपने व्यक्तिगत हित के लिए किसी भी वस्तु की कामना नहीं होती और न वे अपने लिये कुछ लेते ही हैं। जो कुछ भी वे आपसे स्वीकार करते हैं वे वह सब आपके लिये ही स्वीकार करते हैं और आप की अर्पित की हुई सारी की सारी वस्तु को अनेकों गुना लाभदायक रूप देकर आपको ही लौटा देते हैं। जब आप अग्निदेव को एक बूंद घी अर्पित करते हैं तो वे उसका लगभग एक घनफुट वायुमंडल को शुद्ध करने वाला धूम्र बनाकर, आपको बदले में आपकी लागत से भी कई गुना मूल्य चुका देते हैं। यदि आप अपने शरीरस्थ इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं को दस आने का भोजन अर्पित करते हैं तो वे उसके द्वारा आपको दस रुपये पैदा करने की शक्ति एवं स्फूर्ति भी प्रदान कर देते हैं। अतः देवतागण वास्तव में दिव्य स्वभाव वाले होते हैं, वे संतोषी, निस्वार्थी और निष्काम सेवी होते हैं और सदा देना ही जानते हैं।

जिन देवताओं का जिक्र हम ऊपर कर आए हैं उनकी पूजा न्यूनाधिक परिमाण में प्रत्येक व्यक्ति करता है चाहे वह नास्तिक हो या आस्तिक चाहे वह हिंदुस्थानी हो या जापानी। किंतु जो जातियां और जिन देशों के लोग इन देवताओं के ऋण का पूर्णतया प्रतिशोध कर देते हैं वे तो उन्नति करते जाते हैं परंतु जो लोग इनकी विधिवत् पूजार्चा नहीं करते वे सुख-संपत्ति से वंचित रहते हैं। अतः अब स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि यह कैसे जाना जाय कि हमने अपने ऋण का पूर्णतया परिशोध कर दिया अथवा नहीं? यह जानने के लिए हमें विचार कर लेना

चाहिए कि हम पर देवताओं का कितना ऋण होता है और फिर उसी ऋण के अनुसार हमें उसका परिशोध भी करना चाहिए। हम पृथ्वी पर कूड़ा कचड़ा फेंकते हैं, उच्छिष्ट भोजन गिराते हैं, थूकते और मल-मूत्र आदि का त्याग करते हैं, इस तरह हम जो भूमि को अपवित्र करते हैं वही हम पर ऋण है। इस ऋण का परिशोध करने के लिए हमें चाहिये कि जिन स्थानों को हम पुनः पवित्र करवा सकें उन्हें पुनः पवित्र करवादें, व्यर्थ ही वहां न थूकें और निश्चित स्थानों में ही मल-मूल का त्याग करें। हम लोग जहरीला और गंदा धुवां फैलाकर मल-मूत्र आदि की बदबू फैलाकर, सड़ी गली चीजों की दुर्गंध फैलाकर वातावरण को अशुद्ध बनाते रहते हैं अतएव हमारा कर्त्तव्य है कि वायु देवता के ऋण के परिशोध के लिए हम चंदन घी आदि सुगंधित द्रव्यों का हवन कर तथा तुलसी आदि वायु को शुद्ध करने वाले पौधों को उपजाकर वातावरण को शुद्ध बनावें। तात्पर्य यह कि देव ऋण के परिशोध द्वारा हम प्रकृति को कम से कम उस अवस्था में लाने का प्रयत्न अवश्य करें जिसमें कि हमने उसे पाया था। यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो हमारे ऋण का परिशोध न होगा और हम पतित हो जावेंगे। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ हुआ कि बिना सेवा किये या बदले में बिना कुछ दिए हम जो कुछ भी स्वीकार करेंगे वह हमें नीचे गिरावेगा। भगवान कृष्ण इसी ऋण-परिशोध को यज्ञ कहते जान पड़ते हैं। वे कहते हैं "यज्ञ द्वारा बढ़ाए हुए देवता लोग तुम्हारे लिए बिना मांगे ही प्रिय भोगों को देंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष इनके बिना दिए ही भोगता है वह निश्चय चोर है।" अतः यदि हम विश्व की उपयोगी वस्तुओं को कम से कम उनके पूर्वरूपमें ही लाकर न रख देंगे तो वे भविष्य में इतनी क्षीण हो जावेंगी कि हमें उनकी सेवा सहायता से सर्वथा वंचित रहना पड़ेगा।

विश्व की उपयोगी वस्तुओं को उनकी पू[र्व] अवस्था में लाने का क्या उपाय है? यदि आ[प] नित्यप्रति तुलसी-दल तोड़ते हैं तो पौधे की क्ष[ति] पूर्ति के लिये आप उसे पानी दिया कीजिए। य[दि] आप गाय का दूध दुहें तो उसे आप भरपे[ट] भोजन अवश्य दें। यदि आप घोड़े को गाड़ी [में] जोतते हों, तो उसे दाना घास दें, प्रेम से उ[से] पुकारें पुचकारें, खरहरा करें, त्यौहारों के सम[य] अच्छा भोजन दें और कभी कभी उसे छुट्टी भ[ी] दें। यदि आप कुए या तालाब का उपयोग कर[ते] हों तो उसकी सदा मरम्मत करते रहें और चार[ों] तरफ सफाई रखें। इस तरह जब हम प्रकृ[ति] की वस्तुओं का सम्मान करेंगे तो वे भी हमार[ी] सेवा निरंतर करती रहेंगी। इसी यज्ञ द्वारा ह[म] लोग अपनी और देवताओं की परस्पर उन्न[ति] करते हुए वृद्धि को प्राप्त होवेंगे और यही य[ज्ञ] हम लोगों को इच्छित कामनाओं का देने वाल[ा] होवेगा।

थोड़े पाप की भी उपेक्षा न करो। एक ए[क] बूंद पानी से घड़ा भरा जाता है। इसी प्रका[र] थोड़ा थोड़ा पाप करते रहने से भी मनुष्य कु[छ] समय में पाप पंक में डूब जाता है।

\+ + +

जो निर्दोष पुरुष को दोष लगाता है, उ[स] मूर्ख को उसका पाप लौट कर लगता है। जै[से] वायु के रुख फैंकी हुई धूल सहज ही अप[ने] ऊपर आ पड़ती है।

\+ + +

जिसने अपने आपको जीत लिया उसक[ी] विजय किसी भी बड़े सेनापति की विजय से कम नहीं।

\+ + +

विजय से वैर पैदा होता है, पराजय से दु[ख] उत्पन्न होता है। जो जय और पराजय से ऊप[र] है वही सुखी रहता है।

\+ + +

इस कालकूट से बचिए।

आजकल तम्बाकू पीने का बड़ा रिवाज है। बीड़ी, सिगरेट, सिगार एवं हुक्का में सहस्रों रुपये की तम्बाकू प्रतिदिन स्वाहा होजाती है। देखा देखी एक फैशन की तरह इसे पीना आरंभ किया जाता है पर पीछे जाकर इसकी आदत ऐसी गले पड़ जाती है कि पिये बिना काम ही नहीं चलता। इससे फिजूल खर्ची होती है, एक बुरे व्यसन की लत पड़ती है साथ ही स्वास्थ्य की बर्बादी होती है।

रासायनिक परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि तम्बाकू में निकोटिन, पायरीडीन, पायकोलिन, कोलीडिन, मार्शगैस, साइनोजेन, परफेरोल, अमोनिया, कार्बोलिक एसिड, पूसिक ऐसिड, कार्बन मोनक्साइड, फुरफुरल, सेकोलिन, एजोलिन आदि २४ प्रकार के विष रहते हैं। जब तम्बाकू जलाई जाती है तो उसके धुऐं के साथ १६ विष रहते हैं। यह सभी विष एक से एक बढ़कर भयंकर हैं।

कोलिडीन से सिर चकराने लगाता है और स्नायु शिथिल पड़ जाते हैं। कारबोलिक ऐसिड से अनिद्रा, स्मरण शक्ति की कमी, चिड़चिड़ापन उत्पन्न होता है। फुरफोरल तथा पूसिक ऐसिड थकान, जड़ता, उदासी पैदा करते हैं। कार्बन मोनक्साइड से दमा, हृदय रोग, नेत्रों की कमजोरी बढ़ती है। एजोलिन तथा साइनोजेन खून को खराब करते हैं, मार्शगैस से वीर्य पतला पड़ जाता है। पर फेरील से दांत खराब होते हैं, पायरीडीन से आंतों में खुश्की तथा आमाशय में कब्ज रहने लगती है। अमोनिया जिगर को बिगाड़ता है। इस प्रकार सभी विष किसी न किसी प्रकार शरीर को हानि पहुंचाते हैं।

यदि धुआं खींच कर फिर बाहर न निकाल दिया जाय, और धुआं पेट में ही पच जाय तो एक सिगरेट से ही प्राण घातक संकट उत्पन्न हो सकता है। थोड़ी सी तमाकू खालेना मृत्यु के मुंह में लेजासकता। एक सेर तम्बाकू का विषैला सत लगभग ८०० चूहों का, १७० खरगोशों का तथा ३० मनुष्यों का प्राण लेने के लिए पर्याप्त है। छोटे मोटे कीड़े मकोड़े तो हुक्के का पानी ऊपर पड़ जाने मात्र से मर जाते हैं।

तम्बाकू पीने वाले के भीतरी अवयवों में उसके विष धीरे धीरे रमते जाते हैं। हर बार बहुत थोड़ी थोड़ी मात्रा शरीर में जाती है इस लिए तुरन्त ही कोई भयंकर परिणाम तो उत्पन्न नहीं होता पर वे विष अपना असर शनैः शनैः छोड़ते रहते हैं जिससे देह के भीतर वे विष व्याप्त होजाते हैं। हुक्के की नली में जैसे काला कीट जम जाता है वैसे ही पदार्थ स्वांस नली, फेफड़े तथा अन्य स्थानों में जम जाते हैं। जिनके कारण समय समय पर विभिन्न प्रकार के छोटे बड़े रोग उठते रहते हैं।

कोई बुद्धिमान मनुष्य जान बूझ कर स्वेच्छा पूर्वक, खुशी खुशी, संखिया कुचला, पारा, बछनाग आदि विष नहीं खाता पर उन आदमियों की बुद्धि पर तरस आता है जो इस प्रकार के चौबीस विषों के अधिराज इस तम्बाकू रूपी कालकूट को दिन रात पिया करते हैं, और धीरे धीरे अपने स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन को नष्ट करते हैं। और साथ ही धन की बहुत बड़ी बर्बादी करते रहते हैं। तम्बाकू से विषैले हुए रक्त और वीर्य का संतान पर भी बड़ा बुरा असर पड़ता है। हमारी नस्लें दिन दिन खराब होती जाती हैं।

विज्ञ पाठकों के यदि गले उतरे—तो हमारी प्रार्थना है कि इस कालकूट को—तम्बाकू को—परित्याग करने का साहस दिखावें। इसके त्यागने से एक बहुत बड़ी बर्बादी से बचाव होता है।

आरोग्य परम लाभ है। सन्तोष परम धन है। विश्वास परम बन्धु है। आत्मदर्शन परम पुरुषार्थ है।

सतीधर्म का आदर्श।

(पं० रामदहिन मिश्र)

आर्य कवियोंने अनेक आदर्शों की सृष्टि की है। उनमें आर्य सतियों के चरित्र में जिस प्रेमादर्श की सृष्टि की है उसकी समालोचना करना सरल नहीं है। कहा गया है कि सतियों का प्रेम गोपियों के प्रेमके तुल्य है। उसमें वैसा ही निःस्वार्थ भाव है, वैसी ही एकनिष्ठता है और वैसा ही स्वामी का गौरव। इसी भाव से परिपुष्ट होकर वह देवभक्ति में परिणत हो जाता है। तब वह प्रेम देवभाव में परिणत होकर मनुष्य का देवत्व लाभ करा देता है। इस सती-प्रेम की आलोचना करने से प्रेमतत्व को भली भांति समझ सकते हैं।

कामानुराग से प्रेम एकदम भिन्न है। पतिको सुखी बनाकर सती आप सुखी होना चाहती है। वात्सल्य प्रेमका जो उच्च धर्म है वही सती-प्रेम का भी लक्षण है। जिस प्रकार सन्तान को सुखी कर माता पिता सुखी होते हैं उसी प्रकार पतिके सम्बन्ध में भी सती का अनुराग होता है। इससे प्राकृतिक प्रेम यह नहीं चाहता कि हम स्वयं सुखी हों। वह केवल प्रणयपात्रको ही सुखी करना चाहता है। उसी सुखसे प्रेमकी परितृप्ति होती है। किन्तु काम इस प्रकार धर्मपूर्ण नहीं है। कामानुराग दूसरेके द्वारा आप सुख सम्भोग करना चाहता है। इन्द्रिय-लालसाकी परितृप्ति करके काम चरितार्थ होना चाहता है। प्रेम परार्थ पर है और कामानुराग स्वार्थ पर।

प्रेम के परार्थ पर होने के कारण ही सती अपने पतिके गुण-दोष में निरपेक्ष रहती है। गुण देखकर जो प्रेम करेगा वह दोष देखकर घृणा भी करेगा। दोष सभी में रहता है, इससे रूपज और गुणज अनुराग स्थायी नहीं होता। किन्तु प्रकृत प्रेम गुण-दोषका पक्षपाती नहीं होता। माता पिता अपनी सन्तान के दोषगुण से निरपेक्ष होकर उनका आदर, यत्न और स्नेह करते हैं, उनका प्रेम सन्तान के दोषगुण से जैसा निरपेक्ष बना रहता है वैसा ही सती का प्रेम भी दोष-गुण से निरपेक्ष रहा करता है। माता-पिता के स्वाभाविक प्रेमका जो यह अपक्षपात है वही सती-प्रेमका आदर्श है। इसीसे मनुने कहा है कि पतिमें भले ही हजारों दोष हों, किन्तु वह सतीके लिये परम पूजनीय है। केवल मनु ही क्यों, महाभारत आदि सभी आर्य ग्रन्थों में सर्वत्र यही उपदेश है। प्रेमके इस उच्च शिखर तक कामानुराग कभी नहीं पहुंच सकता। कामानुराग रूप और गुणके वशीभूत रहता है। रूप चिरस्थायी नहीं होता और गुण अत्यन्त दोषविहीन होही नहीं सकता। इससे उसके पात्र अपात्रका सदा परिवर्तन हुआ ही करता है। आज जिसे सुन्दर और गुणी समझ, कामनाने उसे अपनाया, कल एक अन्य व्यक्ति उसकी अपेक्षा भी अधिक गुणवान् और रूपवान् देख पड़ा। ऐसा होते ही कामनाकी प्रबल प्रवृत्ति उसकी ओर झुक पड़ी। कामना स्थिर नहीं, चञ्चल है। किन्तु प्रेम का धर्म है स्थिरता। प्रेम निश्चल और एकनिष्ठ होता है। क्योंकि वह दोष से विचलित नहीं होता, गुणका पक्षपाती नहीं बनता। इसी लिये आर्य सती का प्रेम अत्यन्त अनुरागपूर्ण, स्थिर अचञ्चल और एकनिष्ठ होता है, किन्तु कामान्धों का अनुराग सर्वदा अस्थिर और विचलित होता रहता है।

प्रकृतप्रेम निःस्वार्थ और एकनिष्ठ होने के कारण आकांक्षा-रहित रहता है। जो दोषगुणसे निरपेक्ष रहता है, जो दूसरे से सुखी होना नहीं चाहता, उसकी आकांक्षा ही क्या होगी? सती का प्रेम कोई व्यवसाय नहीं है—वह बदला नहीं चाहता। सती यह कभी नहीं कह सकती कि पहले तुल प्रेम करो, फिर मैं भी प्रेम करूंगी। पहले दो तो पीछे ग्रहण करो। प्रकृत प्रेम इस प्रकार का कोई विनिमय व्यापार नहीं है। क्या शकुन्तलाने पेड़-पौधों और पशुपक्षियों से प्रेमकर उनसे कुछ बदला चाहा था? पतिका प्रेम

सराहनीय है, पर ऐसा नहीं है कि पतिका प्रेम होने से ही सती अपने पतिको प्रेम करे। हाँ, यह बात अवश्य है कि सती-प्रेमके साथ पति-प्रेमका संयोग हो जाय तो मणिकाञ्चनका संयोग हो जायगा, किंशुक में सौरभ भर जायगा, केतकी कण्टकशून्य हो जायगी, चन्दन में फूल खिल जायंगे और ऊख में फल लग जायगा। ऐसा न होने पर भी सती अपने पति से प्रेम करती है।

"नाथ तुम्हारे करनेहीसे मैं भी कहो, करूंगी प्रेम?
तुम्हें छोड़कर और न जानूं एक यही है मेरा नेम॥"

वात्सल्य प्रेम जैसा निःस्वार्थ रहता है वैसा ही निःस्वार्थ दाम्पत्य प्रेम भी होना चाहिए। बालबच्चे सयाने होने पर हमारी रक्षा करेंगे, क्या इसी आशा से माता पिता सन्तान से स्नेह करते हैं? वे अपत्य प्रेम की प्रतीक्षा में बैठे नहीं रहते। वे कब यह चाहते हैं कि जब हमारे लड़के बच्चे प्रेम करना सीख लेंगे तभी हम उनसे प्रेम और उनका यत्न करेंगे? नहीं, वे उनके प्रेमकी अपेक्षा न करके अपने अपत्यों को प्राणकी अपेक्षा भी अधिक प्यार करते हैं। आर्य सती भी जब सुयोग्य वरके साथ पिता द्वारा व्याह दी जाती है तब वह पतिगृह में आकर पतिप्रेमकी प्रतीक्षा करके बैठी नहीं रहती। उसमें यह भाव नहीं होता कि जब पति मुझसे प्रेम करेंगे तभी मैं भी उनसे प्रेम करूंगी। वह विवाह के बाद ही पति सेवा में लग जाती है और उसे तन-मन-धन समझकर आदर करती है। वह समझती है कि पति ही मेरा जीवन-सर्वस्व है। पतिका प्रेम भी उससे होता है। पति भी पत्नी-प्रेमकी प्रतीक्षामें बैठा नहीं रहता। विवाहके बाद ही पति भी पत्नीको स्नेहसे देखने लगता है। आर्योंका दाम्पत्यप्रेम विनिमयविहीन और प्रमाकांक्षासे रहित होता है। किन्तु कामानुराग ठीक इसके विपरीत होता है। वह अनुराग परमुखापेक्षी होता है। दूसरे का प्रेम न होने पर कामानुराग उद्दीप्त नहीं होता। वह बदलेका व्यापार है। बिना अदलाबदलीके पशुपक्षियोंमें प्रेम नहीं होता, इसीसे ऐसे प्रेमको पाशव प्रेम कहते हैं। ——

लकड़हारो! सावधान!!

एक लकड़हारा जंगल से लकड़ी के कोयले बनाकर शहर में लाया करता था और उन्हें बेच कर अपना पेट पाला करता था।

एक बार कोई राजा रास्ता भूलकर उसी जंगल में आनिकला जहाँ लकड़हारा कोयले बना रहा था। राजा बहुत प्यासा था, लकड़हारे ने उसे पानी पिलाया और उसके श्रम निवारण के लिए सेवा सुश्रूषा भी की।

राजा ने प्रसन्न होकर लकड़हारे से कहा—तुमने मेरे साथ जो नेकी की है, मैं उसका इनाम देना चाहता हूं। बोलो—तुम्हें क्या चाहिए?

लकड़हारे ने कहा—राजन्! आप प्रसन्न हैं तो मुझे एक ऐसा वन देदीजिए जिसके सहारे मेरी शेष जिन्दगी आसानी से कट जाय। राजा ने उसे एक बहुत बड़ा चन्दन का उपवन इनाम दे दिया।

लकड़हारे ने चन्दन के वन में अपना डेरा जमा लिया। वह पेड़ों को काटता और कोयले बनाकर शहर में बेच आता। पहले जगह जगह पेड़ ढूंढ़ने जाने की अपेक्षा अब उसे यह सुभीता होगया कि एक ही स्थान पर लगे हुए बहुत से पेड़ मिल गये। दूर दूर जाने की असुविधा दूर होगई।

बहुत दिन बीत गये। राजा को एक दिन ध्यान आया कि आज चन्दन वन में चलें और उस लकड़हारे को देखें चन्दन की तिजारत में अब तो वह लखपती करोड़पती होगया होगा। स्वर्गीय सुख का जीवन बितारहा होगा।

राजा घोड़े पर सवार होकर चन्दन वन पहुंचा। पर वहां तो दूसरे ही दृश्य थे। सारा वन कट चुका था। पेड़ों के स्थान पर राख के ढेर लग रहे थे। केवल एक पेड़ बचा था। उसी के नीचे लकड़हारा अपनी कुल्हाड़ी लिये उदास बैठा था। इस अन्तिम पेड़ के कोयले बन जाने

के बाद कल फिर इधर उधर भटकना पड़ेगा— यह चिन्ता उसे बेचैन बनाये हुए थी।

राजा को यह दृश्य देखकर बड़ा दुख हुआ। लकड़हारे के पास पहुंचा उसकी आंखों में क्रोध, क्षोभ, और सन्ताप की ज्वाला जल रही थी।

राजाने पेड़ पर से एक टहनी तोड़ी और लकड़हारे से कहा—जा, इसे बाजार में बेचकर आ।

लकड़हारा शहर में पहुंचा, टहनी को बेचने की आवाज लगाने लगा। असली चन्दन की सुगन्ध से सारा बाजार महक रहा था, खरीददारों की भीड़ लग गई। हर एक चाहता था कि यह मुझे मिले। टहनी की कीमत उसे तीस रुपये प्राप्त हुई।

रुपये लेकर लकड़हारा राजा के पास वापिस लौट रहा था। उसका हृदय अपनी नासमझी पर भारी दुख अनुभव कर रहा था। इतने मूल्यवान वृक्षों का वन मैंने कोयले बना बना कर बेच दिया। जो एक ही पेड़ हजारों रुपयों का था, उसके कोयले एक दो रुपये में ही बिक पाये सोभी, काटने, जलाने, बुझाने, ढोने और बेचने की भारी मेहनत के बाद। कितना बड़ा असूल्य अवसर हाथ आया था पर कैसे दुर्भाग्य के साथ वह चला गया। लकड़हारा हाथ मल मल कर पछता रहा था। उसके आंसुओं की धारा रुकती न थी।

राजा चन्दन वन को इस प्रकार नष्ट किये जाने पर क्षोभ और सन्ताप के साथ वापिस लौटा, उधर लकड़हारा ठंडी आहें भर रहा था—काश, उसे समय रहते समझ आगई होती, तो वह आज खाली हाथ, चिन्ताग्रस्त, राजा का घृणा पात्र, कंगाल होने की अपेक्षा बहुत बड़ा धनी हुआ होता, उसके प्रयत्न से प्रसन्न होकर राजा ने और भी कोई बड़ा उपहार दिया होता।

मौका निकल गया। आज तो राजा भी, और लकड़हारा भी—दोनों ही दुखी होरहे थे।

❀ ❀ ❀

यह लकड़हारे और राजा की कहानी, वास्तविक है या काल्पनिक, यह हम ठीक ठीक नहीं कह सकते। पर इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जो तथ्य इस कहानी में है, वह ज्यों का त्यों हमारे जीवनों पर घटित होता है।

परमात्मा ने मनुष्य जीवन जैसी सुरदुर्लभ असूल्य सम्पत्ति दी है। वह चाहे तो उसके बेश कीमती क्षणों का सदुपयोग करके सच्ची सम्पदाओं से सम्पन्न होसकता है। पर देखा जाता है कि लोग चन्दन के पेड़ के कोयले बनाने में लगे हुए हैं। और उस कोयले की बिक्री के पैसों से सन्तुष्ट हैं। कुच, काञ्चन का लाभ एवं लोभ कोयले की बिक्री के समान है। इतने स्वल्प लाभ से जो प्रसन्न हैं, उन्हें मूर्ख लकड़हारे से कम किसी प्रकार नहीं समझा जासकता।

भगवान् जब देखता है कि चन्दन का बगीचा इस प्रकार जलाया जारहा है तो उसे सन्ताप होता है। मृत्यु की गोदी में पहुंच कर जब मनुष्य देखता है कि मैंने सुर दुर्लभ सम्पदा को कोयले बना बना कर बेच दिया तो उसे सहस्र बिच्छुओं के काटने के समान पश्चात्ताप की पीड़ा होती है। इस हानि की, दुनियाँ की और किसी हानि से समता नहीं हो सकती।

आज हम लोग नशे में चूर हैं, अज्ञान की वारुणी पीकर उन्मत्त होरहे हैं। धन के पहाड़ जमा करने और इन्द्रिय भोगों को जीभर कर भोगने की आकांक्षा से सराबोर होरहे हैं। आज यही बातें सबसे महत्वपूर्ण मालूम पड़ती हैं इन्हीं के लिए एक एक क्षण खर्च होता है आत्म चिन्तन के लिए सत्कर्म के लिए एक मिनट की फुरसत नहीं मिलती, पर वह दिन दूर नहीं जब यही बातें सबसे बड़ी बेवकूफी मालूम पड़ेगी और इस नासमझी के लिए लकड़हारे की तरह सिर धुन धुन कर और हाथ मल मल कर बिलाप करना पड़ेगा।

लकड़हारो! सावधान!! पाठको! सावधान!

लोहे की काई लोहे को खाजाती है इसी प्रकार पाप की वासनाएं मनुष्य को खाजाती हैं।

पारिवारिक-प्रजातंत्र।

सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा कितनी लाभदायक एवं उपयोगी है, इसका विवेचन गतअंक में किया जाचुका है। इसकी इतनी उपयोगिता देखकर ही समाज में इसका प्रचलन हुआ था। अब भी यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार से प्रथक होने की मांग करता है तो वह स्वार्थी समझा जाता है। जो लोग शामिल रहते हैं वे उदार दृष्टिकोण के सतोगुण प्रधान समझे जाते हैं।

उपरोक्त तथ्य के होते हुए भी आज हम देखते हैं कि सम्मिलित परिवारों में क्लेश, कलह, मनोमालिन्य, ईर्षा, द्वेष, आपाधापी, दुराव एवं कपट का बोलबाला हैं। घर में जो अधिक कमाता है, जो अधिक चतुर है, जिसकी चलती है वह अपने तथा अपने स्त्री पुत्रों के स्वार्थ साधन को, प्रधानता देता है और परिवार के अन्य सदस्यों की उपेक्षा करता है। बड़े, छोटों पर रौब गांठते उन्हें उचित अनुचित तरीके से दबाते हैं। छोटे-बड़ों का समुचित आदर नहीं करते। उनकी कर्कशता के प्रतिरोध में अपमान जनक शब्द कहते तथा अवज्ञा करते हैं। कोई काम से जी चुराता है किसी को अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। खान पान, आदर सम्मान, कपड़े जेवर, श्रम विश्राम, आना जाना, मनोरंजन, जेबखर्च, बीमारी, चिकित्सा आदि में जब असमानता का व्यवहार होता है तो ईर्षा के अंकुर मन में उठते हैं। यह जब बराबर पनपते रहते हैं, बराबर उनमें पानी लगता है, एक के बाद दूसरी घटनाएं इन अंकुरों को पुष्ट करने के लिए उपस्थित होती रहती हैं तो मनोमालिन्य की जड़ें मजबूत हो जाती हैं और नारंगी की तरह बाहर से एक दीखते हुए भी भीतर ही भीतर उस परिवार में प्रथकता मजबूत होजाती है। ऐसे परिवार उन सब लाभों से वंचित रह जाते हैं जो कि सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा में मिलने चाहिए। असंतुष्ट सम्मिलित परिवारों की स्थिति कई बार तो प्रथक प्रथक रहने की अपेक्षा भी अधिक बुरी होजाती है।

पारिवारिक कलह, असंतोष और मनोमालिन्य का कारण व्यवस्थाक्रम में गडबडी है। परिवार एक राज्य है। इसकी व्यवस्था, प्रणाली, शासन पद्धति, भी राज्य व्यवस्था के ढंग पर ही होनी चाहिए। प्राचीन काल में राजतंत्र का सिद्धान्त उपयोगी भी था और सर्व प्रिय भी। पर आज समय बहुत बदल गया है। सांसारिक, सामाजिक, मानसिक परिस्थितियों में भारी हेर फेर होगया है। इसलिए राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र को पसंद किया गया है। इंग्लैण्ड आदि देशों में जहां राजतंत्र कायम हैं वहां भी प्रजा का हित ही प्रधान है। प्रजातंत्र के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं (१) जनता द्वारा शासन (२) जनता के हित के लिए शासन (३) हर नागरिक के अधिकार की रक्षा। इसी आधार पर हमें पारिवारिक प्रजातंत्र की स्थापना करनी चाहिए। वैधानिक प्रधान घर का मुखिया रहेगा, पर गृह नीति के संचालन में परिवार के सदस्यों का समुचित हाथ रहना चाहिए।

घर के लोगों की नित्य नहीं तो प्रति सप्ताह एक बैठक अवश्य होनी चाहिए, जिसमें विचार विनिमय के लिए सबको अवसर मिले। इस बैठक में निम्न विषयों पर चर्चा की जावें (१) हर सदस्य अपनी कठिनाई इच्छा तथा आवश्यकता बतावे (२) गृहनीति में जो दोष हों या दूसरे सदस्य जो भूल कर रहे हों उसे बतावें (३) पारिवारिक उन्नति के लिए जो सुझाव हों उन्हें रखें (४) घर से बाहर की व्यापारिक, सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक समस्याओं पर विचार प्रकट करें। बैठक में घर का प्रधान एकर करके घर के हर सदस्य से यह चारों प्रश्न पूछें और बिना किसी संकोच के, निर्भयता पूर्वक किन्तु नम्रता और प्रेम मिश्रित वाणी में अपनी बात विस्तार पूर्वक कहने के लिए हर सदस्य को अवसर दिया जाय। पर्दा प्रथा के कारण जो

नव वधुएँ अपने विचार खुद नहीं प्रकट करना चाहतीं वे किसी दूसरे के द्वारा अपनी बात कहलवा सकती हैं।

फूट और लड़ाई का अधिक आधार गलतफहमी पर निर्भर रहता है। जब आपस में विचार परिवर्तन होता रहता है तो बहुत सी गलतफहमी दूर होती रहती हैं और किसी ने जो भूल की थी वह सुधार लेता है। इस प्रकार इन बैठकों से लड़ाई झगड़े का आधा भाग तो अपने आप नष्ट होजाता है। शेष बातों के संबंध में आपसी विचार विनिमय से ऐसे मार्ग ढूंढ़े जासकते हैं जिनसे कठिनाइयां कम हों और सुविधाएं बढ़ें।

जब घरका हर सदस्य यह समझता है कि गृह व्यवस्था में मेरा भी हाथ तथा अधिकार हैं, मेरे स्वार्थ भी समान रूप से सुरक्षित हैं, तो फिर कोई कारण नहीं कि वह सम्मिलित रहने के इतने लाभों को छोड़कर प्रथकता की कठिनाई और जिम्मेदारी को अपने ऊपर लादना चाहे। यदि समानता, सम्मान, सहृदयता और स्वार्थ रक्षा की चतुर्विधि व्यवस्था हर सदस्य के लिए बरती जाय तो परिवार सुदृढ़ आधार पर खड़े रहेंगे और अलग होने की आवश्यकता न पड़ेगी।

घर में सब लोग एक दूसरे का उचित सम्मान करें। कोई किसी के स्वाभिमान पर चोट न पहुंचावे। रोगी, बालक, वृद्ध या किसी विशेष स्थिति की बात छोड़कर भोजन के संबंध में समानता बरती जाय। स्वास्थ्य, आयु और योग्यता के अनुसार सबके काम बंटे हुए हों। न कोई निठल्ला रहे और न किसी को अत्यधिकश्रम करना पड़े। अपनी स्थिति के अनुसार थोड़ा २ जेब खर्च भी हर एक को मिलता रहे जिसे स्वेच्छा पूर्वक खर्च कर सकें। एक दूसरे की गतिविधि पर ध्यान रखें। समानता का अर्थ बालक और वृद्ध को समान मात्रा में भोजन देना या लड़की और नव वधू को बराबर कपड़े जेवर बनवाना नहीं है। अपनी अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुरूप सबको चीजें दीजांय। आवश्यकता के अनुकूल वस्तुएं देना ही समानता का वास्तविक तात्पर्य है यदि रोगी को फल मिलते हैं तो निरोगों का भी वही मांगना यह समानता नहीं है। घर की आर्थिक स्थिति का, आय व्यय का ब्यौरा घर के समस्त बालिगों को मालूम रहना चाहिए।

इस प्रकार पारिवारिक प्रजातंत्र की स्थापना से गृह शासन भली प्रकार चल सकता है। सब की विचार धारा का समन्वय होने से उत्तम गृह नीति बन सकती है। जब परिवार अधिक बढ़ने लगे या स्वभावों में असाधारण अन्तर होने से किसी की पटरी न बैठती हो तो "प्रान्तीय स्वाधीनता" दी जानी चाहिए। केन्द्रीय सरकार के आधीन, गृह स्वामी की देखरेख में, अलग छोटे उपपरिवार भी बनाये जासकते हैं। लड़झगड़ कर अलग होने की अपेक्षा, सहमति, स्वीकृति और संरक्षता में प्रथक होना कहीं अच्छा हैं। स्त्रियों का संघर्ष चौका चूल्हा अलग कर देने या काम बांट देने से दूर होजाता है। पुरुषों का संघर्ष कार्यक्षेत्र की प्रथकता से मिट जाता है।

संकीर्ण, अनुदार, तुच्छ दृष्टि कोण के कारण घर में संघर्ष होते हैं। अपने निजी स्वार्थों की परवा न करके घर के अन्य सदस्यों के हित का समुचित ध्यान रखा जाय, आपस में प्रेम, सहानुभूति, सेवा, सहायता एवं समानता का उदार धार्मिक दृष्टिकोण रखा जाय तो परिवार का प्रजातंत्र बड़ी अच्छी तरह चल सकता है। यह प्रजातंत्र घर में शान्ति रख सकता है, सुव्यवस्था रखसकता है। शत्रुओं को परास्त कर सकता है, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा सकता है और घर के हर एक व्यक्ति को सुरक्षा, सुविधा, निश्चिन्तता, प्रसन्नता, तथा सम्पन्नता प्रदान कर सकता है। ऐसे प्रजातंत्र की प्रजा अपनी शारीरिक, मानसिक सामाजिक, धार्मिक, और आध्यात्मिक उन्नति की ओर निरन्तर अग्रसर होसकती है।

आइए! हम लोग अपने घरों में पारिवारिक प्रजातंत्र की स्थापना करके गृह-स्वराज्य का उपभोग करें।

संतान हीन होना दुर्भाग्य नहीं है

सांसारिक सुखों में एक संतान सुख भी है। अपनी बनाई निर्जीव वस्तुऐं भी प्रिय लगती हैं फिर संतान तो सजीव वस्तु है। बाजार में बिकने वाले खिलौने मनुष्य का मन आकर्षित करते हैं फिर चलता फिरता, हंसता, बोलता, कोमल भावनाओं का आदान प्रदान करने वाला खिलौना तो और भी सुन्दर लगता है। पिता को, पालन पोषण करने वाले का, गौरव भी तो संतान से मिलता है। इस गौरव से मनुष्य के मन में रहने वाली बड़प्पन प्राप्त करने की इच्छा तृप्त होती है। बड़े होने पर यह बालक मेरा नाम चलावेगा, मेरे रिक्त स्थान की पूर्ति करेगा, मेरी सेवा करेगा तथा वृद्धावस्था बीमारी आदि में सहारा देगा, घर को सुसम्पन्न बनावेगा ऐसी आशायें पिता अपने बालक से करता है।

एक और भी मनोवैज्ञानिक कारण सन्तान प्रेम का है वह यह कि मनुष्य अपनी अतृप्त इच्छाओं को तृप्त करने के लिए बालक को माध्यम बनाकर तृप्ति लाभ करना चाहता है। जैसे कोई व्यक्ति स्वयं तो धन नहीं कमा सका पर उसके मनमें यह आशा लगी रहती है कि मेरा बेटा प्रचुर धन कमावेगा। खुद को कुरूप स्त्री मिली तो वह उस अतृप्त इच्छा को, बेटे की बहू सुन्दर प्राप्त करके करना चाहता है। इसी प्रकार गुजरे हुए बालकपन को वह एक बार फिर पाना चाहता है पर अपने जीवन में यह संभव नहीं, इसलिए सन्तान की बाल लीलाओं में रस लेकर वह उन हसरतों को पूरी करता है। अपने अधूरे काम को पूरा होने की पुत्र या शिष्य से आशा की जाती है। इस प्रकार अपनी असफलताओं की निराशा को पिता, अपनी सन्तान के रूप में पूरा करने की कल्पनायें, आशायें बांधता है। यह मानसिक आयोजन बड़ा ही प्रिय लगता है। इन आशा तन्तुओं से अपने को आबद्ध करके, अभागा मनुष्य भी सौभाग्य की सुनहरी किरणों की झांकी किया करता है। यह मन का महल, सच्चे महल से भी अधिक प्रिय लगता है क्योंकि वास्तविक वस्तु की अपेक्षा उसका चित्र अधिक सुहावना लगता है। इन सब कारणों से सर्वसाधारण की इच्छा होती है कि उसे सन्तान सुख मिले। उपरोक्त कारणों में से कन्या की अपेक्षा पुत्र द्वारा अधिक की पूर्ति होती है। इसलिए लोग कन्या की अपेक्षा पुत्र को अधिक चाहते हैं। अधिक पुत्र होना अधिक सौभाग्यशाली होने का चिन्ह समझा जाता है।

परन्तु कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें पुत्र नहीं है। वे पुत्र प्राप्ति के लिए बड़े चिन्तित रहते हैं। जिनके केवल कन्याऐं हैं वे बेटे की कामना करते हैं। कितने तो ऐसे हैं जिनके न कन्या है न पुत्र, वे और भी अधिक चिन्तित देखे जाते हैं। इस चिन्ता के निवारण के लिए, देवी, देवता, साधु, सन्त, वैद्य-डाक्टर, मनाये जाते हैं। फिर भी कइयों को सफलता नहीं मिलती है। ऐसे लोग प्रायः बहुत दुखी, चिन्तित और निराश देखे जाते हैं। आइए, विचार करें कि क्या यह चिन्ता वास्तविक है? क्या सन्तान की आवश्यकता इतनी अनिवार्य है कि उसके बिना मनुष्य इतना दुखी रहे?

इस लेख को आरंभ करते हुए, हमने सबसे प्रथम ही वे कारण बता दिये हैं जिनके कारण सन्तान प्राप्ति की इच्छा होती है। इन सब कारणों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने से यह प्रतीत नहीं होता कि इन सबकी पूर्ति केवल अपने निजी बालकों के द्वारा ही होसकती है। ममता और मोह से प्रेरित होकर "अपनी" कहलाने वाली वस्तुओं में ही प्रसन्नता अनुभव करता है। इसलिए उन्हें जमा करता रहता है। घर, मोटर, जायदाद, जेवर, जवाहिरात, स्त्री, पुत्र, सब 'अपने' होने चाहिए। यह अपनापन, बहुत संचय की तृष्णा उपजाता है। अन्यथा उपयोगिता की दृष्टि से कितनी ही वस्तुऐं निरर्थक

होती हैं। फिर भी उनके संचय की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। सन्तान के संबंध में भी ऐसी ही बात है। जिन इच्छाओं की पूर्ति के लिए सन्तान चाहते हैं उनमें से कितनी ही तो ऐसी हैं जो किन्हीं विरलों की ही पूर्ण होती हैं और कितनी ही ऐसी है जो दूसरों के बालकों से पूर्ण होसकती हैं। कितनी ही इच्छाएं ऐसी हैं जो केवल मात्र भ्रम हैं। तीनों ही प्रकार की इच्छाओं पर सम्मिलित रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट होजाता है कि वे इतनी महत्व पूर्ण नहीं है कि उनके बिना इतना दुखी होना चाहिए जितने कि आजकल के सन्तान हीन देखे जाते हैं।

संतान से जो इच्छा किन्हीं विरलों की ही पूर्ण होती हैं, वे गौरव की, कमाई खिलाने की, सेवा मिलने की हैं। आज के समय ऐसे सपूतों के दर्शन दुर्लभ हैं। बुड्ढे मां बाप को एक भार समझा जाता है, उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा की जाती है। जवान बेटा घर का मालिक होता है, बुड्ढे के हाथ में कोई शक्ति नहीं रहती, वह पराश्रित होजाता है, अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कमाऊ बेटे के मुंह की ओर ताकता है, उसकी टेढ़ी भवोंको देखकर सहम जाता है। चौपाल की चर्चा में तो बुड्ढे को ही बाप कहा जाता है, पर व्यवहारिक रूप में बेटा-बाप बन जाता है बापको बेटे की तरह रहना पड़ता है। जवानी के नशे में अक्सर आज के बेटे बाप का सम्मान तो नहीं ही करते हैं अपितु अवसर आने पर अपमान तक करने में नहीं चूकते। जो बड़े २ मनसूबे बाप बांधा करता था, बेटे से जिस व्यवहार की आशाएं किया करता था, समय आने पर वह बालू का महल मिस्मार हुआ दिखाई देता है। किन्हीं विरलों की ही यह इच्छा पूर्ण होती हैं।

बालकों को तोतली बोली, मधुर मुसक्यान, निष्कपट स्नेह, यह सब तो पड़ौसी के बालक से भी प्राप्त होसकते हैं। सेवा, उपकार और सद्गुणों से पराये अपने होजाते हैं। जो प्रत्युपकार बेटे नहीं चुकाते, वह शिष्यों से, अनुयायियों से प्राप्त होजाता है। आज गांधी जी के असंख्यों अनुयायी उनके इशारे पर अपना तनमन धन न्योछावर करने को तत्पर हैं, जवाहर लाल नेहरू के आदेश पर लाखों की संख्या में भारतवासी अपने शिर कटवाने को तैयार हैं। अन्धे विरजानंद की, वेदप्रचार की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उनके शिष्य दयानंद ने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जीवन अर्पण करना स्वीकार किया। गुरु नानक के शिष्यों ने अपने गुरु के आदेश पर क्या क्या नहीं किया? जो बातें दूसरों के लड़कों ने कर दिखाई, वह अपने लड़के भी नहीं कर सकते। महात्मा गान्धी के सगे लड़के उनके अनुयायी नहीं है, उनके कहने में नहीं चलते पर दूसरों के लड़के उनकी आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा की तरह मानते हैं। सेठ जमानालाल बजाज अपने को गांधी जी को गोद धरा पुत्र कहा करते थे। बापू की आज्ञानुसार लाखों रुपयों की सम्पत्ति सेठजी खर्च करते रहते थे। इतनी कमाई उनके किसी सगे बेटे ने उनके आदेश पर खर्च नहीं की। तात्पर्य यह है कि संतान इच्छा के कितने ही कारण ऐसे हैं जिनकी पूर्ति दूसरों के बालकों में आत्मभाव रखने से होसकती है।

कुछ कारण ऐसे हैं जिन्हें केवल भ्रम कहा जासकता है, जैसे यह ख्याल करना कि बेटे से हमारा नाम चलेगा। इन पंक्तियों के पाठकों से हम पूछते हैं कि—आप कृपा कर अपने पूर्वजों के पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से नाम बताइए? तीन चार पांच पीढ़ी से अधिक ऊपर की पीढ़ी के पूर्वजों के नाम शायद ही किसीको याद होंगे। जब अपने ही पोते, पर पोतों को नाम नहीं याद रहा तो दुनियां में तो संतान द्वारा चलेगा ही कैसे? यह दुनियां ब्लैक बोर्ड की तरह है जिस पर बार बार अक्षर लिखे और मिटाये जाते हैं। खेत में बार बार बीज़ बोये जाते हैं और बार बार फसल काटी जाती है। हर बरसात में असंख्य बूंदें पानी की बरसती है और अपने रास्ते चली जाती हैं। क्या इनमें से किसी का नाम चलता

है ? कौन किसे याद रखता है ? दुनिया की याददास्त इतनी फालतू नहीं है कि वह गये गुजरे आदमियों को याद रखे, उनके नाम चलाये। सृष्टि के आदि से अब तक असंख्यों मनुष्य हुए और मर गये। उनकी संतानें मौजूद हैं पर नाम याद रखने का किसी को अवकाश नहीं है। यह सब देखते हुए भी जो यह सोचते हैं कि संतान से मेरा नाम चलेगा वह भारी भ्रम है।

इसी प्रकार यह भी भ्रम है कि मरने के बाद भी संतान खाना पीना परलोक में पहुंचाया करेगी। हर आत्मा स्वतंत्र है। उसे अपने कर्म का ही फल मिलता है। बेटे की रोटी से परलोक वासी आत्मा का पेट नहीं भरता। परमात्मा इतना कंगाल नहीं है कि उसके घर में रोटी का अकाल पड़ जाय और बेटे के पिंडोदक बिना बाप को भूखा प्यासा रहना पड़े। सद्गति अपने कर्मों से होती है। इसके लिए बेटे का आसरा तकना निरर्थक है।

मेरे पीछे मेरा उत्तराधिकारी कौन होगा? यह बात भी भला कोई चिन्ता की बात है। लेने के लिए तो हर कोई हाथ पसारे खड़ा है। जिसे भी देजाइए वही खुशी से फूला न समायेगा। फिर जिनके लिए छोड़ा जाया जायगा वे उसका सदुपयोग ही करेंगे इसका भी कोई निश्चय नहीं। हम देखते है कि कितने ही लड़के बाप के माल को लूट का माल समझ कर ऐसी बेदर्दी से फूंकते हैं कि देखने वालों को तरस आता है।

इन सब बातों पर विचार करने से पता चलता है कि बेटा हो ही, यह कोई ऐसी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है, जिसके बिना किसी को चिन्तित होना पड़े। कई दृष्टियों से तो यह अच्छा भी है। बालकों की भरण पोषण की काफी जिम्मेदारी पड़ती है। उनके भोजन, वस्त्र, शिक्षा, शादी, व्यापार के लिए पिता को जितनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है, जीवन का जितना बहुमूल्य समय उत्सर्ग करना पड़ता है यदि उतना परमार्थ में खर्च किया जाता तो आत्म कल्याण की दिशा में एक भारी मोर्चा फतह हो सकता था। अपने बीमार पड़ते ही, भगवान का ध्यान आने की अपेक्षा यह चिन्ता सवार होती है कि मेरे बाद बच्चों की क्या दशा होगी। मरते वक्त चित्त इसी बेचैनी में जाता है फल स्वरूप उस अतृप्ति के कारण फिर जन्म लेना पड़ता है। बच्चों की आवश्यकता पूर्ति के लिए चिन्तित मनुष्य, न करने योग्य कार्य भी करने लगता है। जिन्हें संतान नहीं है, वे इस प्रकार के झंझटों से आसानी से बचे रह सकते हैं।

चीन और भारत यह दो देश ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। इस बढ़ी आबदी के लिए अन्न जुटाना मुश्किल पड़ रहा है। चारागाह जोत डाले गये हैं। पशुओं के चरने की जगहें छीनकर खेती की जारही है पर आवश्यकता भर के लिए अन्न पूरा नहीं होता! फलस्वरूप भुखमरी और बीमारी से एक बड़ी जनसंख्या काल के गाल में चली जाती है। ऐसी स्थिति में और अधिक आबादी बढ़ाना, देश के लिए भार रूप है। सभी विचारक इस बात की बड़ी आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं कि देश में अर्थ संकट उत्पन्न नहीं करना है तो जिस तेजी से जनसंख्या बढ़ रही है उसे रोका जाय। महात्मा-गांधी ब्रह्मचर्य द्वारा संतान निरोधकी अपील करते है। दूसरे विद्वान इसके लिए कृत्रिम उपायों तक का सुझाव पेश करते हैं। जो, हो, इतना निश्चित है कि जनसंख्या की वृद्धि से विश्व की मानव जाति की कठिनाइयाँ बढ़ती हैं घटती नहीं।

इन बातों पर विचार करते हुए निस्संतानों को दुखी होने का कोई कारण नहीं। उन्हें जो स्थिति प्राप्त है उसमें उन्हें भगवत् कृपा की झांकी करनी चाहिए क्योंकि इस स्थिति के कारण वे लाभ में ही हैं घाटे में नहीं। जो समय सन्तान के भरण पोषण में लगता उसे सत्कर्मों में लगाना चाहिए। जो धन सन्तान लिए खर्च करना था या उनके लिए छोड़ जाना था उसे शुभ कर्मों के लिए, संसार में धर्म बढ़ाने के लिए लगाजाना

चाहिए। शुभकर्म से सच्ची सद्गति प्राप्ति होती है। इसलिए शुभ कर्म को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाना चाहिए। धर्म के लिए लगाई हुई पूंजी, ईश्वर की बैंक में जमा होजाती है और जन्म जन्मान्तरों तक मिलती रहती है। इससे अधिक सम्पत्ति की सुरक्षा और क्या होसकती है ?

इस लेख का तात्पर्य यह नहीं है कि सन्तान व्यर्थ है। जिन्हें ईश्वर ने दी है वे उसे ईश्वर प्रदत्त उत्तर दायित्व समझ कर भली प्रकार निबाहें। सन्तान को प्रभु की अमानत समझ कर उसके पोषण और विकाश के लिए ईमानदार माली की तरह उन पौदों की सेवा में लगे रहें। जिन्हें भगवान से सन्तान नहीं दी है वे आत्मोन्नति में अपनी शक्ति लगावें। सद्गुण बढ़ावे, धर्म सम्पत्ति बढ़ावें, इस संचय से उनका बुढ़ापा आसानी से आनंद पूर्वक कट जायगा। संतान रहित होना भी संतानवान् होने की तरह ही सौभाग्य का चिन्ह है। हमें दोनों ही स्थितियों में प्रसन्न रहना चाहिए।

हृदय में दया रखना, स्वभाव को नम्र रखना और दान में प्रवृत्ति रखना, इन तीन बातों से मनुष्य सद्गति को प्राप्त करता है।

\+ + +

चिन्ता के समान कोई आग नहीं, द्वेष के समान कोई विष नहीं, क्रोध के समान कोई शूल नहीं, लोभ के समान कोई जाल नहीं।

\+ + +

बहुत गाल बजाने वाला और बड़ा आडम्बर बनाने वाला पंडित नहीं होता। पंडित वह है जो अपने ज्ञान और व्यवहार को एक रखता है।

\+ + +

जो कम पढ़ा है या नहीं पढ़ा है वह मूर्ख नहीं। मूर्ख वह है जो अपने को और दूसरों को ठगने का प्रयत्न करता है।

\+ +

बोध-वाणी।

(गोस्वामी श्री बिन्दुजी)

१—प्रातःकाल उठकर इन चार बातों का स्मरण करो—

(१) हम उस इष्ट देव की शरण हैं, जो सृष्टि-मात्र के समस्त सम्प्रदायों का एकमात्र आधार है। (उस इष्ट-देव का नाम है 'प्रेम')

(२) हम उस गुरु की वन्दना करते हैं, जिसका किसी भी प्राणी से विरोध नहीं है।

(उस गुरु देव का नाम है 'ज्ञान')

(३) हम उस पिता को धन्यवाद देते हैं, जिसने इस शरीर को कर्त्तव्य वेदी पर बलिदान हो जाने की शिक्षा दी है।

(उस पिता का नाम है 'धर्म')

(४) हम उस माता के सदैव ऋणी हैं, जिसकी गोद में हमें कोई भी सांसारिक क्लेश, पीड़ा नहीं दे सकते।

(उस माता का नाम है 'शान्ति')

२—रात्रिको सोते समय इन चार बातों का स्मरण करो—

(१) हम उस रात्रि में हैं, कि जिसने समस्त चराचर पर अपना मोहन-मन्त्र डाल रक्खा है।

(उस रात्रि का नाम है 'प्रकृति')

(२) हम उस निद्रा का आह्वान कर रहे हैं, कि जो जागृत अवस्था में भी, हमको हमारा पता नहीं देती।

(इस निद्रा का नाम है 'समाधि')

(३) हम वह स्वप्न देखना चाहते हैं, कि जिस में यह जगत भी स्वप्न ही नज़र आता है।

(उस स्वप्न का नाम है 'अनुभव')

(४) हमें उस आलस्य की प्रतीक्षा है, कि जिसे प्राप्त करके मनुष्य किसी से बोलना भी नहीं चाहता।

(उसका नाम है 'सन्तोष')

क्या हम हार गये ?

———

आज जनता में राजनैतिक निराशा छाई हुई है। भारत माता के टुकड़े होगये। पाकिस्तान बन गया। कई रिसायतें आज़ाद होकर अपने अलग पाकिस्तान बनारही हैं। इस प्रकार अनेक टुकड़ों में भारतभूमि खण्ड खण्ड होती दीख रही है।

लीग को मनमाही रिआयतें मिली हैं। सीमा प्रान्त और सिलहट में लीग ने दुबारा मत गणना करानी चाही सो तुरन्त स्वीकार करली गई। यदि यही सिद्धान्त भारत विभाजन के बारे में काम लाया जाता तो निश्चित था कि आज जिन प्रदेशों को पाकिस्तान बनाया जारहा है वहां की जनता पाकिस्तान के विरोध में मत देती। कांग्रेस की यही मांग थी, पर उसे नहीं माना गया। "आत्म निर्णय" का अधिकार प्रादेशिक इच्छा के ऊपर निर्भर रहता है पर उसे उठाकर ताक में रख दिया गया और मजहब के आधार बटवारा किया गया, जो कि संसार के इतिहास में एक दम नई चीज है।

सन् ४२ का हिन्सात्मक आन्दोलन, इंग्रेजी सरकार ने कुछ ही महीनों में पूरी शक्ति से कुचल दिया था। सन् १८५७ के विद्रोह को दबाने में उससे भी अधिक बल प्रयोग हुआ था और उस प्रचण्ड शक्तिशाली विद्रोह को विफल होना पड़ा था। इसके विपरीत बंगाल, पंजाब और सीमा प्रान्त की लोम हर्षक भयंकर खून खराबी महीनों बीत जाने पर भी जारी है। बिहार का हिन्सा प्रतिशोध, कांग्रेस के नेताओं और वहां के शासकों ने एक सप्ताह में पूर्ण रूप से कुचल दिया था। यदि सच्चा प्रयत्न होता तो कोई कारण नहीं, कि जिन सूबों में आज रक्तपात होरहा है वह अब तक बन्द न होगया होता।

अभी उलझनों का अन्त नहीं हुआ है वरन् वे और बढ़ती दिखाई देती हैं। कांग्रेस की सीधी सी माँग थी कि देशी रियासतों का जो संबंध अब तक सरकार के साथ रहे हैं वही संबंध उसकी उत्तराधिकारी सरकारके साथ रहें। पर ऐसा स्वीकार नहीं किया गया। अनेकों स्वेच्छाचारी राजाओं के हाथ में सार्वभौम सत्ता देकर वहां की प्रजा के हितों को रौंद डाला गया है दूसरी ओर उन राजाओं को विदेशी राज्यों का अड्डा अपने यहां स्थापित करने की छूट मिल गई है। इसके फल स्वरूप टूटे फूटे भारत की कठिनाइयां असाधारण रूप से बढ़ादी गई हैं। सीमा कमीशन का प्रश्न उलझा पड़ा है, सिखों की प्रादेशिक एकता टूट रही है। पाकिस्तान, हिन्दुस्तान से भले पड़ौसी के से संबंध रखेगा इसका कोई संतोष प्रद प्रमाण अभी तक नहीं मिल रहा है।

इन स्थितियों में भारतीय जनता में १५ अगस्त को मनाये जाने पर स्वराज्य समारोह के लिए कोई खास उत्साह पैदा नहीं होरहा है। लोग अपने को पराजित समझ रहे हैं। लीगियों को थोड़ी उछल कूद के बल पर उनकी इच्छा से बहुत अधिक उन्हें मिल गया। दूसरी ओर स्वाधीनता के लिए इतने लम्बे समय तक इतना कष्टसाध्य आन्दोलन करने पर भी इतना कम, इतना उलझन भरा मिला, इस देखकर साधारणतः यही लगता है कि हम हार गये।

\+ + +

पर गंभीरता पूर्वक, सूक्ष्म कूटनीतिक दृष्टि कोण से विचार करने पर आज की निराशा का कोई औचित्य दिखाई नहीं पड़ता। हमें यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि "इंग्रेजी सरकार हमारी माता है और हिन्दू मुसलमान या राजा प्रजा पुत्र हैं जिसके साथ उसे समान न्याय करना चाहिए।" वस्तु स्थिति इनसे बिलकुल भिन्न है। इंग्रेजों ने हमारे देश पर अपने स्वार्थ के लिए छलबल से कब्जा किया था। इस कब्जे को कायम रखने में जो जितना सहायक हुआ वह उतना ही उनका मित्र रहेगा। भारत की स्वाधीनता के मार्ग में रोड़ा अटकाने और इंग्रेजी स्वार्थों को कायम रखने में जिन लोगों ने कोई कसर नहीं

रखी है, आगे भी वे अपनी इसी नीति को छोड़ने वाले नहीं दीखते, ऐसी दशा में उन्हें इनाम मिलना जरूरी है। सन् १८५७ में इंग्रेजों की सहायता करने वाले कितने ही लोगों को जागीरें मिली थीं। लीग को, राजा नवाबों को भी आज जागीरें मिल रही हैं। इसे देखकर हमें आश्चर्य या दुख नहीं करना चाहिए। भूतकाल में भी मीर जाफर, जयचन्द, मानसिंह जैसे लोग इस प्रकार के लाभों से लाभान्वित हुए हैं।

जो लोग इंग्रेजों को निकाल बाहर करने के के लिए इतने दिनों से लड़ते आरहे हैं उन्हें अपने विरोधी से यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि वह उनके साथ पिछली बातों को भूलकर उपकार बुद्धि से सहायता करेगा या मित्र शत्रु से समता बरतेगा। ऐसी आशा तो देवताओं से ही रखी जासकती है।

हमें पराजय अनुभव करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि १५ अगस्त को जो कुछ मिलने वाला है उसमें खोया कुछ नहीं, थोड़ा बहुत पाया ही है। एक मोर्चा जीता ही है। राष्ट्रीयता प्रधान प्रान्तों को स्वशासन प्राप्त होरहा है। देश की दो तिहाई जनता के हाथों अपने भाग्य निर्णय का अधिकार हाथ आजावेगा। अब तक विदेशी सत्ता पूरी मजबूती के साथ सारे राष्ट्र को अपने फौलादी पंजे में जकड़े बैठी थी, अब उसमें से दो तिहाई भाग छूट जायगा। सांस लेने के लिए अवसर मिल जाने पर प्रजा को बड़ी राहत मिलेगी और शेष जनता की स्वतंत्रता के लिए भी वह अधिक सुविधा पूर्वक प्रयत्न कर सकेगी। जनता की जिस शक्ति के दबाव से इतना प्राप्त होरहा है वही शक्ति शेष सफलता भी प्राप्त करके रहेगी।

राजे, नवाब, सामन्त या धर्मान्ध लोगों के हाथ में आज प्रजा का एक भाग शासन के लिए दिया जारहा है। प्रजा के हितों की इस उपेक्षा से प्रजातंत्र के समर्थकों को दुख होना स्वाभाविक है। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यह दूसरा जमाना है—प्रजा का युग है। कुछ दिन पहले प्रजा, राजा की भेड़ बकरी होती थी। वह उसका मालिक होता था। जो चाहता था अपनी लाठी के बल से प्रजा से कराता था। पर अब यह बात रहने वाली नहीं है। प्रजा की इच्छा से, वोट से, राज्य शासन चलते हैं। कुछ समय के लिए प्रजा को अन्धकार में, भ्रम में, उन्माद में रखा जासकता है पर आखिर मनुष्य-मनुष्य है, वह अपना हित अनहित देखता है। जो शासक या शासन जनता के हितों के साथ खिलवाड़ करता है वह दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया जाता है। जो लोग आज के बटवारे में जागीरें पाकर फूले नहीं समाते। प्रजा की विवेक बुद्धि एवं अधिकार रक्षा की भावना जिसदिन जागृत होगी, उसी दिन इन फूलने वालों को रोने के लिए मजूर भी पैदा न होंगे।

आज जो कठिनाइयां पैदा की जारही हैं वे कृत्रिम हैं। भारत माता की भौगोलिक सीमा ऐसी है कि उसके खंड खंड हो ही नहीं सकते। प्रजा अपने हित, निरंकुश एवं धर्मान्ध लोगों के हाथ में अधिक समय तक रहने नहीं देसकती। बाहर वालों से मिलकर घर का बंटाढार करने का षडयंत्र रचने वाले बहुत समय तक अपने कुचक्रों में सफल नहीं होसकते। आपस में घृणा, द्वेष, पृथकता, फूट एवं शत्रुता का जहर फैलाने वाले बहुत दिन तक अपने अनुयायियों को उल्लू नहीं बना सकते। राष्ट्र की स्वस्थ विवेक बुद्धि जब पूरी शक्ति के साथ जागृत होगी तो यह कृत्रिम कठिनाइयां आंधी में तिनके की तरह उड़ जावेंगी।

कांग्रेस को दोष देना फिजूल है। इस स्थिति में वे लोग इससे अधिक और कुछ कर भी नहीं सकते थे। इंग्रेजों की बात न मानने पर संग्राम ही एक मात्र रास्ता था। मि० जिन्ना की अ[illegible] जिस प्रकार मानली जाती है उस प्रकार कांग्रेस की भी चल जाती यह आशा रखना भोलापन है "सब कुछ या कुछ नहीं" की नीति राजनैति[illegible]

मूर्खता होती है। कूट नीति में "जितना मिले उतना लो, शेष के लिए लड़ो" की नीति अपनानी पड़ती है। कांग्रेस ने वही किया है।

तात्कालिक दृष्टि से तो बटवारा एक हद तक सुविधा जनक भी है। २५ फीसदी अल्पसंख्यक, शासन पर आधा कब्जा किये हुए थे। भिन्न संस्कृति की रक्षा के नाम पर उन्होंने राष्ट्र भाषा, गोवध, जैसे सीधेसाधे प्रश्नों को उलझा रखा था, सेना और पुलिस में उनका अत्यधिक अनुपात होने से निष्पक्ष सुरक्षा की निश्चिन्तता नहीं थी, आये दिन अल्प संख्यकों के हितों की विशेष सुरक्षा के नाम पर नित नयी मांगें की जाती थीं, जिनसे दबकर पाठ्य पुस्तकों में जगज्जननी माता सीता को "बेगम सीता" नाम दिया गया था। बटवारे से यह प्रगति विरोधी पत्थर हट जायगे ! और भारतीय जनता को अपनी आकांक्षा के अनुरूप अपनी संस्कृति तथा हितों की रक्षा का उचित अवसर मिलेगा।

मत सोचिए कि हम हार गये। हमने खोया कुछ नहीं, कुछ न कुछ पाया ही है। एक मोर्चा फतह हो किया है। आइए, अपनी बिखरी हुई शक्तियों का संचय करें, संगठन को दृढ़ करें, सद्बुद्धि का विकाश करें, शेष कठिनाइयों को हल करने की क्षमता उत्पन्न करें। शताब्दियों बाद, विदेशियों विजातियों के चंगुल से छूटकर हम स्वभाग्य निर्णय का सूर्योदय देख रहे हैं। संसार परिवर्तन शील है—काल गतिवान है, एक गहरा धक्का खाने के बाद अब हमारा सौभाग्य पुनः चमकने को है। उसके संभालने के लिए आइए हम अपनी भुजाओं में समुचित बल पैदा करें। हम हारे नहीं हैं थोड़े जीते सही, पर जीते हैं—आगे अभी और जीतेंगे। परमात्मा हमारी सहायता करेगा।

अपने अधिकार के लिये लड़ना अथवा मरना पाप नहीं, वरन् कर्तव्य है।

अपनेको गर्वके साथ हिन्दू कहो

(श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती)

एक सभा में भाषण देते हुए लोकमान्य तिलक ने कहा, 'हिन्दू वह है जो विश्वास करता है कि वेद स्वतः प्रमाण हैं और उनमें ध्रुव सत्य है।' हिन्दू महासभा ने हिन्दू की एक परिभाषा की है—'भारत में जिस धर्म का विकास हुआ है, उसमें विश्वास करने वाला हिन्दू है।' कुछ महानुभावों का कहना है कि जो ब्राह्मण और गौ की रक्षा करते हैं, सब हिन्दू हैं। कुछ कहते हैं कि भारत को अपनी मातृभूमि और पुन्य भूमि मानने वाले हिन्दू हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि जो अपने आपको हिन्दू समझे और कहे, वह हिन्दू है, जो वेदों, स्मृतियों, पुराणों तन्त्रों और धर्मों का मूल सदाचार के नियम को मानते हैं, एवं परब्रह्म में विश्वास रखते हैं और कर्म न्याय तथा पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं, वे हिन्दू हैं। सनातन और वैदिक धर्म एवं संस्कृति में विश्वास रखने वाले हिन्दू कहलाते हैं।

हिन्दू केवल नाम ही नहीं है, आदि काल से ही हमारे राष्ट्र का सम्पूर्ण इतिहास हिन्दू नाम के साथ जुड़ा हुआ है। हमारे आदर्श और सिद्धान्त हिन्दू शब्द में इस प्रकार निहित हैं कि हिन्दुत्व की साधारण शब्दों में परिभाषा होना कठिन है। कवि, महापुरुष और अवतारी विभूतियों ने हिन्दुत्व की महत्ता और गौरवगान गाने के लिए विश्व में पदार्पण किया है। महर्षि, महात्मा और साधुजन हिन्दू शास्त्र और दर्शन बनाने के लिए अवतरित हुए हैं ! वीर पुरुषों और योद्धाओं ने हिन्दुत्व के लिए युद्ध किए और उनके लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये हैं।

दया, सद्भाव, उदारता, अहिंसा, सत्य, पवित्रता आदि सभी दैवी गुण हिन्दू शब्द से संयुक्त हैं।

मेरे मित्रो ! अमृत पुत्रो ! गौरव और गर्व के साथ अपने आपको हिन्दू कहो।

प्रत्यक्ष फलदायिनी योग की गुप्त शिक्षाएँ

इस ज्ञान के आधार पर आप थोड़े ही दिनों में कुछ से कुछ बन सकते हैं।

कितने ही अध्यात्म प्रेमी सज्जन योग की शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं पर कोई क्रम बद्ध निश्चित पाठ्यक्रम या शिक्षा व्यवस्था न मिलने से वे मन मार कर चुप बैठ जाते हैं और इस विज्ञान के महान लाभों से वंचित रह जाते हैं। इस कठिनाई को ध्यान में रख कर, सर्व साधारण की सुविधा के लिए अखण्ड ज्योति कार्यालय ने कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है। यह पुस्तकें बाजारू किताबें नहीं हैं। वरन् जिन्होंने दीर्घकाल तक स्वयं साधनाएँ की हैं, भारत वर्ष का कोना कोना जिन्होंने योगियों की तलाश में छाना है, संसार के विविधि देशों और भाषाओं के अध्यात्म शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया है, उनके अनुभवों का निचोड़ है। जो लाभ किसी सुविज्ञ आध्यात्म विद्या के ज्ञाता के पास रह कर प्राप्त किया जासकता है वही लाभ यह पुस्तकें प्राप्त करा सकती हैं।

जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए, भौतिक और आत्मिक, वाह्य और आन्तरिक समृद्धि एवं सुख शान्ति के लिए जिस शिक्षा और साधना की आवश्यकता होती है, वह सभी इन पुस्तकों में मौजूद है। यह ६६ पुस्तकें योग विद्या के-कर्म कौशल के—६६ पाठ हैं। हर एक पुस्तक का लागत मात्र छै छै आना रखा गया है।

प्रति मास एक सैट की पुस्तकों का पाठ्यक्रम पूरा करना चाहिए। इस प्रकार चार महीने में साधारणतः यह शिक्षा क्रम पूरा होसकता है। कोई बात समझ में न आवे तो जवाबी पत्र भेज कर पूछा जासकता है। चार मास का सम्पूर्ण शिक्षा कोर्स पूरा कर लेने वालों के ज्ञान की अखण्ड ज्योति कार्यालय द्वारा प्रश्न पत्र भेजकर परीक्षा लीजाती है और उत्तीर्ण छात्रों को सुन्दर चित्ताकर्षक प्रमाण पत्र दिया जाता है। यह उत्तीर्ण सज्जन अखंड ज्योति के अन्तरंग सदस्य समझे जाते हैं और उनकी सम्मति से इस संस्थान का कार्य संचालन किया जाता है। ——

आरोग्य शास्त्र का निचोड़——प्रथम मास का पाठ्यक्रम।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, का मूल आरोग्य माना गया है। निरोगता प्राप्त करके ही अन्य सिद्धियां प्राप्त होसकती हैं। इसलिए योग के शिक्षार्थियों के लिए आरोग्य विद्या की यह सोलह पुस्तकें उपस्थित की जारही हैं। इनके आधार पर खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त किया जासकता है और प्राप्त हुए स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जासकता है। यह पुस्तकें पाठक को एक ऐसा कुशल डाक्टर बना देती हैं जो अपना और दूसरों का इलाज सफलता पूर्वक कर सकता है।

१ सूर्य चिकित्सा विज्ञान—सूर्य की प्रचण्ड रोग नाशक शक्ति द्वारा वैज्ञानिक ढंग से कठिन रोगों की चिकित्सा विधि।

२ प्राण चिकित्सा विज्ञान—मनुष्य के अंदर गजब की विद्युत शक्ति है। उसके द्वारा समस्त रोगों का इलाज।

३ स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या—आध्यात्मिक सरल साधनों द्वारा तन्दुरुस्त और खूब सूरत बनने के अद्भुत उपाय।

४ भोग में योग—शीघ्र पतन, स्वप्नदोष, प्रमेह, नपुंसकता आदि रोगोंको योग साधनोंसे दूरकरने और मनचाही स्तम्भन शक्ति प्राप्तकरनेकी गुप्तविधिय

५ बुद्धि बढ़ाने के उपाय—जो स्मरण शक्ति बढ़ा कर बुद्धिमान बनना चाहते हैं उनके लिये यह पुस्तक कल्पवृक्ष के समान है।

६ आसन और प्रणायाम—इन दोनों साधनों की विज्ञान सम्मत विवेचना और साधन शिक्षा।

७ तुलसी के अमृतोपम गुण—तुलसी का पौदा हिंदू धर्म के अनुसार पूजनीय माना जाता है। वैज्ञानिकों ने उसमें अमृत के समान चमत्कारी स्वस्थ्य वर्धक गुण पाये हैं इन गुणोंका वर्णन है।

८ महान जागरण—आत्म विश्वास द्वारा

जीवन की काया पलट करने का मनोविज्ञान शास्त्र सम्मत मार्ग दिखाया गया है।

९ तुम महान हो—अपनी महानताको खोजने प्राप्त करने, बढ़ाने और सुरक्षित रखनेकी वैज्ञानिक प्रणाली।

१० घरेलू चिकित्सा—हर रोग के ऊपर शर्तिया फायदा करने वाले छोटे छोटे नुसखे दिये हैं।

११ बिना औषधि के कायाकल्प—उपवास वस्तिक्रिया तथा प्राकृतिक आहार बिहार के द्वारा स्वस्थ, बलवान, फुर्तीला, निरोग और कान्तिवान बनने की विधि व्यवस्था बताई गई है।

१२ पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण—मिट्टी, पानी, हवा, आग आकाश इन पांचों तत्वों द्वारा हर रोग का इलाज करने की अद्भुत चिकित्सा प्रणाली।

१३ दीर्घ जीवन के रहस्य—संसार के दीर्घ-जीवी मनुष्यों ने लम्बी आयु किस प्रकार, कि इन उपायों से प्राप्त की है। इस पुस्तक में उन अनुभव पूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन है।

१४ नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा—बिना ओपरेशन के बिना दवा खाये या लगाये, इस पुस्तक में बताये हुए प्राकृतिक उपायों द्वारा, नेत्र रोग दूर हो सकते हैं। ज्योति बढ़ सकती है और चश्मा छूट सकता है।

१५ स्वप्नदोष की मनो वैज्ञानिक चिकित्सा—स्वप्न दोष की जड़ मस्तिष्क में होती है। वह दवाओं से नहीं मन की चिकित्सा करने से दूर हो सकता है जो लोग स्वप्न दोष से दुखी हैं। उनके लिए यह पुस्तक कल्प वृक्ष के समान है।

१६ दूध की आश्चर्य जनक शक्ति—दूध पृथ्वी का अमृत है। इसे विधि पूर्वक सेवन करने से मनुष्य कायाकल्प कर सकता और सब रोगों से छुटकारा पा सकता है।

जीवन विज्ञान की शिक्षा—द्वितिय मास का पाठ्यक्रम

यह सोलह पुस्तकें जीवन की अत्यन्त महत्व पूर्ण समस्यों को सुलझाने वाला ज्ञान आपके संमुख उपस्थित करती हैं। इस विज्ञान को भली प्रकार समझ कर हृदयंगम कर लेने से जीवन यात्रा की अधिकांश कठिनाइयां दूर होजाती है और ऐसे रहस्य मालूम होजाते हैं जिनके आधार पर श्री, समृद्धि, कीर्ति, उन्नति, प्रसन्नता तथा सुख शान्ति का द्वार खुल जाता है, इन्हें पढ़ने से पर पाठक को ऐसा लगता है मानों किसी अज्ञात् गुप्त आध्यात्मिक धन की प्राप्ति हुई हो।

१ मनुष्य शरीर की बिजली के चमत्कार—शरीर की बिजली से होने वाले आश्चर्य जनक कार्यों का वैज्ञानिक विवरण।

२ धनवान बनने के गुप्त रहस्य—धन कुवेरों द्वारा कार्य रूप में आये हुए ऐसे सिद्धान्तों का वर्णन है जिन पर चलने से आप भी धनवान बन सकते हैं।

३ पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विद्या—मन चाही सन्तान प्राप्त करने के सारे रहस्य इस पुस्तक में खोल कर रख दिये हैं।

४ मरने के बाद हमारा क्या होता है—मृत्यु से लेकर नये जन्म तक जीव जिन परिस्थितियों में रहता है उनका महत्वपूर्ण विवेचन।

५ मित्र भाव बढ़ाने की कला—जीवन के उत्कर्ष में सच्चे मित्रों का सहयोग बड़ा भारी सहायक होता है। अधिक संख्या में, अच्छे और सच्चे मित्र आसानी से प्राप्त करने के रहस्य।

६ आकृति देखकर मनुष्य की पहचान—निर्धारित विषय को ऐसे अच्छे सुबोध ढंग से समझाया गयाहै कि हर कोई लाभ उठा सकता है।

७ संजीवनी विद्या—जिन्दगी किस तरह जीनी चाहिये इस प्रश्न का संतोष जनक समाधान

८ अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति—यह तीनों विभूतियां सुरलोक में बताई जाती हैं। पर इस पुस्तक से बताया गया है कि यह तीनों तत्व मनुष्य के अन्दर हैं, और यदि कोई उनका उपयोग करना सीख जाय तो देवताओं के समान समृद्ध हो सकता है।

९ हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं—स्वप्न दीखने के कारण उनके हानि लाभ, स्वप्नों द्वारा अदृश्य बातों की जानकारी दुःस्वप्नों का निवारण आदि अनेक महत्व पूर्ण बातों का वैज्ञानिक विवेचन।

१० विचार करने की कला—मनुष्य जैसे विचार करता है वैसा ही बन जाता है इस तथ्य को ध्यान में रख कर अच्छे विचारों को अपनाने

और कुविचारोंको त्यागने की रीतियाँ समझाईहैं।

११ हम वक्ता कैसे बन सकते हैं—चतुर वक्ता, कुशल व्याख्यान दाता बनने की इच्छा रखने वालों के लिए यह बड़े ही काम की पुस्तक है।

१२ लेखनकला—लेख, पुस्तकें एवं कविता लिखने की कला सीखने वालों के लिए यह पुस्तक अनुभवी गुरु का काम देती है।

१३ सफलता के तीन साधन—आकांक्षा, परिश्रम शीलता और कष्ट सहिष्णुता के सहारे मनुष्य किस प्रकार कठिन से कठिन कार्यों को पूरा कर सकता है यह विज्ञान इस पुस्तक में बड़े हृदय ग्राही रूप से समझाया गया है।

१४ शिखा और सूत्र का रहस्यमय विवेचन—चोटी और जनेऊ, हिन्दू धर्म के दो प्रमुख चिन्ह हैं। इस पुस्तक में इन दोनों का गुप्त रहस्य, महत्व और लाभ सविस्तार बताया गया है।

१५ दैवी संपदाएं—धन दौलत पृथ्वी की संपदा है। इससे सांसारिक सुख मिलते हैं। पर दैवी संपदाएं वे सद्गुण हैं, जिन से लौकिक और परलौकिक सुख शान्ति मिलती है उनका वर्णन।

१६ कुछ धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान—श्राद्ध, तीर्थ, दान, देववाद आदि विषयों की शङ्काओं बुद्धि संगत समाधान।

ब्रह्म विद्या का अमृतोपम ज्ञान—तृतीय मास का पाठ्यक्रम।

ब्रह्मविद्या संसार की सब बड़ी विद्या है। जिसे जानकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता। ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मृत्यु, बन्धन, मोक्ष, कर्मफल, धर्म अधर्म, आत्म दर्शन, ईश्वर प्राप्ति, स्वर्ग, नरक, ऋद्धि, सिद्धि आदि अनेकों गूढ़ आध्यात्मिक विषयों को ऐसे सरल सुबोध ढंग से तर्क और प्रमाणों के आधार पर समझाया गया है कि एक बालक भी भली प्रकार समझ सकता है। इतने गूढ़ और महत्व पूर्ण विषय पर इतना सर्वांगपूर्ण और सुबोध साहित्य अन्यत्र कहीं मिल सकता।

१ ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है—ईश्वर सम्बन्धी सम्पूर्ण शंकाओं का वैज्ञानिक समाधान एवं ईश्वर साक्षात्कार के प्रामाणिक साधन।

२ क्या धर्म ? क्या अधर्म ?—धर्म अधर्म की गंभीर एवं गूढ़ गुत्थी को बड़े सरल और हृदयग्राही ढंग में सुलझाया है।

३ गहना कर्मणो गतिः—कर्मों का उलटा फल मिलते देख कर बड़ा भ्रम पैदा होता है। उन सब भ्रमों को यह पुस्तक निवारण कर देती है।

४ जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश—चौरासी लाख योनियों में भ्रमण, जन्म मरण का चक्कर, पुनर्जन्म, स्वर्ग मुक्ति आदि की विवेचना।

५ पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा—इसमें धर्म ग्रन्थों के चुने हुए बड़े ही मार्के के शिक्षाप्रद श्लोक अर्थ समेत पांच अध्यायों में संग्रह हैं।

६ शक्ति संचय के पथ पर—शक्ति ही सुख की जननी है इस लिए अनेक प्रकार की शक्तियों के संचय का प्रदर्शन किया गया है।

७ आत्म गौरव की साधना—अपना गौरव एवं महानता स्थिर रखने तथा बढ़ाने के सुदृढ़ सिद्धान्तों का दिग्दर्शन।

८ प्रतिष्ठा का उच्च सोपान—घर और बाहर सर्वत्र प्रतिष्ठा, आदर, सम्मान, श्रद्धा, प्राप्त करने का मार्ग इसमें बताया गया है।

९ आन्तरिक उल्लास का विकाश—अन्तःकरण में सच्चे सुख, सन्तोष, शान्ति तथा उल्लास प्राप्त करके एवं जीवन को आनन्द मय बनाने की शिक्षा।

१० आगे बढ़ने की तैयारी—भीतरी और बाहरी जगत में सब प्रकार की उन्नति करने की योजना।

११ अध्यात्म धर्म का अवलम्बन—मनुष्यों के बनाये हुए सम्प्रदाय, मजहब, फिरके तो अलग२ हैं पर सब की आत्मा का एक ही धर्म है। उसी एक आत्म धर्म का विवेचन।

१२ ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन—योग, जन्त्र, तन्त्र, देव, सिद्ध, बरदान, सिद्धि आदि का वैज्ञानिक विवेचन।

१३ ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग—सदाचार, सत्कर्म और परोपकार से ईश्वर और स्वर्ग की प्राप्ति की शास्त्रीय पुष्टि।

१४ विवेक सतसई—कबीर, रहीम, तुलसीदास आदि के चुने हुए, मार्मिक, विवेक उत्पन्न करने वाले ७०० दोहों का संग्रह।

१५ अध्यात्म शास्त्र—अध्यात्म शास्त्र क्या है इसकी दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, तार्किक

और धार्मिक दृष्टि से विवेचना की गई है।

१६ अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार—ईश्वर और परलोक का विवेचन व उसकी प्राप्ति का मार्ग

१७ वैज्ञानिक अध्यात्मवाद—आध्यात्मवाद के हर पहलू पर इस पुस्तक में वैज्ञानिक रीति से प्रकाश डाला गया है।

चमत्कारी साधनाएं—चतुर्थ मास का पाठ्यक्रम।

यह पुस्तकें एक ऐसा अध्यात्मिक साधना क्रम है, जिसका नित्ये एक दो घंटे अभ्यास करने पर थोड़े ही दिनों में चमत्कारिक आत्म शक्तियां प्राप्त की जासकती हैं। योगी लोग वर्षों कठिन परिश्रम के पश्चात् जिन शक्तियों को प्राप्त करते हैं, उन्हें सुगमता पूर्वक घर रह कर स्वल्प काल में प्राप्त करने की यह एक सीधी पगडंडी है। इन पुस्तकों में दी हुई साधनायें ऐसी नहीं हैं जिनमें कुछ भूल होजाने से किसी अनिष्ट की संभावना हो। थोड़ा सा भी इनका साधन किया जाय, तो भी बहुत लाभ मिल जाता है। यह पुस्तकें योग के महान लाभों से लाभान्वित होने का सर्व सुलभ मार्ग है।

१ मैं क्या हूं—आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करने की कुछ सरल साधन-विधियों का वर्णन।

२ परकाया प्रवेश—मैस्मरेजम के ढंग पर आत्म शक्ति को दूसरे के शरीर में प्रवेश करके उसे प्रभावान्वित करने की विद्या।

३ स्वर योग से दिव्य ज्ञान—स्वरोदय विद्या द्वारा गुप्त और भविष्य की बातों को जान लेने की रहस्य पूर्ण साधना।

४ वशीकरण की सच्ची सिद्धि—दूसरों को वश में करने के सच्चे और हजारों बार आजमाये हुए प्रयोगों का वर्णन।

५ जीव जन्तुओं की बोली समझना—मूक पशु संकेतों द्वारा किस प्रकार अपने मनोभाव हमारे ऊपर प्रकट करते हैं, एवं शकुन विद्या का क्या रहस्य है, यह बताया है।

६ ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग—इन तीनों योगोंको हर ग्रहस्थ सुविधा पूर्वक नित्य व्यवहारिक जीवन में उतर कर अपने को आनन्दित किस प्रकार बना सकता है इसका उत्तर।

७ यम नियम—अष्टांग राज योग की पहली सीढ़ी ५ यम और ५ नियमों की सरल साधना।

८ प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—योग की इन तीनों कठिन साधनाओं को नये ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि हर कोई इनका अभ्यास सुगमता पूर्वक कर सके और योग के महान् फल प्राप्त कर सके।

९—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा—मैस्मरेजम विद्या के रहस्य इस छोटी पुस्तक में हैं। जादूगरों द्वारा जो चालाकियां मैस्मरेजम के नाम पर बरती जाती हैं वह भी इसमें खोल दी।

१० हस्त रेखा विज्ञान—योरोप के सुप्रसिद्ध पामिस्ट डा० शेरो के सिद्धान्तों द्वारा हस्त रेखा संबंधी महत्व पूर्ण जानकारी इसमें दी है।

११ गायत्री की चमत्कारी साधना—वेदमाता गायत्री की मंत्र साधना के अनेकों विधान और उनके अद्भुत लाभों का दिग्दर्शन कराया है।

१२—ग्रहस्थ योग—ग्रहस्थ-धर्म का पालन करना एक योग साधना है। इस पुस्तक में बताई हुई व्यवस्था पर आचरण करने से अपना घर स्वर्ग के समान आनन्द मय बन सकता है।

१३ प्रार्थना के चमत्कार—ईश्वर प्रार्थना का विज्ञान, सिद्धान्त, रहस्य, महत्व तथा लाभ बताते हुए उन चमत्कारों का भी वर्णन किया गया है जो प्रार्थना की शक्ति से प्राप्त होते हैं।

१४ विचार संचालन विद्या—बेतार की इस आध्यात्मिक तार वर्की द्वारा दूर २ रहने वाले दो व्यक्ति अपने मनोभावों को एक दूसरे के पास भेज सकते हैं।

१५ सुखी वृद्धावस्था—पर इस पुस्तक में ऐसे उपायों बताये गये हैं जिनसे वृद्धावस्था बड़ी सुख मय बन सकती है।

१६ आत्मोन्नति का मनोवैज्ञानिक मार्ग—कुछ ऐसे महत्व पूर्ण उपाय इस पुस्तक में बताये गये हैं जिनके आधार पर आत्मोन्नति के पथ पर बढ़ने में बड़ी सहायता मिलती है।

प्रत्यक्ष फलदायिनी साधनायें—इस पुस्तकमें अनुभव पूर्ण बड़ीही चमत्कारी सरल साधनायें हैं।

३) रु० से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। पता-'अखंडज्योति' कार्यालय, मथुरा।

शास्त्र मंथन का नवनीत।

मूर्खस्य पञ्च चिन्हानि गर्वो दुर्वचनं तथा।
क्रोधश्च दृढवादश्च परवाक्येष्वनादरः ॥१॥

मूर्ख के पांच चिन्ह हैं—घमंड करना, दुर्वचन बोलना, क्रोध करना, हठ करना और दूसरों की बातों का निरादर करना।

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पंचमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्ति हितैर्बुधाः ॥ २ ॥

विद्या, शूरता, चतुरता, बल और धैर्य ये पांचों बुद्धिमान के स्वाभाविक मित्र हैं। लोग मित्र के समान इनका व्यवहार करते हैं।

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पंच यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संगतिम् ॥ ३ ॥

जिस मनुष्य में देशाटन करने की इच्छा, भय, लज्जा, चतुरता और काम पड़ने पर देने की शक्ति, ये पांच बातें न हों, उसका साथ नहीं करना चाहिए।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥४॥

दुष्ट मनुष्य के साथ मित्रता और प्रीति नहीं करनी चाहिए। अङ्गार गरम रहने पर तो हाथ को जलाता है और ठंडा होने पर हाथ को काला कर देता है।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षणाच्छेदन-ताप-ताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते,
त्यागेन, शीलेन, गुणेन, कर्मणा ॥५॥

जैसे घिस कर, काट कर, तपा कर और कूट कर इन चार रीतियों से सोने की परीक्षा की जाती है, वैसे ही त्याग, शील, गुण और कर्म से पुरुष की परीक्षा होती है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
शुष्कं वैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥ ६ ॥

सत्य बोले, प्रिय बोले, परन्तु अप्रिय सत्य न बोले और किसी के साथ बिना कारण सूखा वैरविवाद भी न करे।

प्रस्तावसदृशं वाक्यं स्वभावसदृशं प्रियम्।
आत्म-शक्ति-समं कोपं यो जानाति स पंडितः ॥७

जो मनुष्य प्रसङ्ग के अनुसार बोलना, स्वभाव से ही प्रिय बनना और अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है, वह पंडित है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥ ८ ॥

प्यारी बात बोलने से सब प्राणी सन्तुष्ट हो जाते हैं। इस लिये सदा प्रिय बोलना चाहिये। बोलने में क्या दरिद्रता?

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदंति सन्तः ॥ ९ ॥

बुरे कामों से बचाकर अच्छे काम में लगावे, छिपाने योग्य बातों को छिपाकर गुणों को प्रकट करे, विपत्ति के समय में साथ न छोड़े और समय पड़ने पर सहायता दे, बुद्धिमान् लोग अच्छे मित्रों के यही लक्षण बताते हैं।

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥१०

पवित्रता, उदारता, शूरता, सुख-दुख में समानता, चतुरता, प्रेम और सत्यता ये मित्रों के गुण हैं।

आरंभ-गुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्ध परार्धभिन्ना
छायेव मैत्री खल-सज्जनानाम् ॥११

जैसे प्रातःकाल की छाया प्रारम्भ में तो बहुत बड़ी और फिर छोटी होने लगती है, यही दशा दुष्टों की मित्रता की है। और सज्जनों की मित्रता दोपहर के पश्चात् की छाया के समान है, जो आरम्भ में तो बहुत छोटी परन्तु अन्त में बढ़ती ही चली जाती है।